भारतीय दर्शन एवं विज्ञान का तुलनात्मक तत्त्वावलोचन

डॉ. हरवंशलाल ओबराय

सम्पादक एवं संकलनकर्ता

स्वामी संवित् सुबोधगिरि

डॉ. हरवंशलाल ओबराय समग्र

खण्ड 1 : राष्ट्रीय समस्याएं और इतिहास

खण्ड 2 : महापुरुष : व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व

खण्ड 3 : धर्म-दर्शन-संस्कृति-उत्सव-विज्ञान एवं मनोविज्ञान

खण्ड 4 : वेदान्त दर्शन की वैज्ञानिकता

खण्ड 5 : गीता दर्शन की सार्वभौमिकता

प्रकाशक एवं वितरक :
स्वामी संवित् सुबोधगिरि
श्री नृसिंह भवन
संन्यास आश्रम,
भक्तानन्द शिव मन्दिर
भीनासर 334403
बीकानेर (राजस्थान)
मो. : 09413769139

अन्य पुस्तक प्राप्ति स्थान :

- श्री सुशील कुमार ताम्बी
  प्रज्ञा साधना आध्यात्मिक पुस्तक केन्द्र
  A/3 आर्य नगर
  एन.के. पब्लिक स्कूल के पास
  मुरलीपुरा, जयपुर 302039
  फोन : 0141-2233765 मो. : 09829547773
- **ज्ञान गंगा प्रकाशन**
  पाथेय भवन,
  बी-19, न्यू कॉलोनी, जयपुर
  दूरभाष : 0141-2371563
- **अखिल भारतीय इतिहास संकलन योजना**
  आप्टे भवन, केशव कुंज, झण्डेवाला
  नई दिल्ली 110055
  फोन : 011-23675667
- **हिन्दू राइटर्स फोरम**
  129-बी, डी.डी.ए. फ्लैट्स (एम.आई.जी.)
  राजौरी गार्डन, नई दिल्ली 110027
- **जागृति प्रकाशन**
  श्री कृष्णानन्द सागर
  एफ-109, सेक्टर-27, नोएडा 201301
  फोन : 0120-2538101 मो. : 09871143768

ISBN 978-93-84133-06-1

प्रथम संस्करण : 2015 ई.

प्रतियां : 1100

मूल्य : पचास रुपये मात्र

आवरण : गौरीशंकर आचार्य

मुद्रक :
सांखला प्रिंटर्स, विनायक शिखर
शिवबाड़ी रोड, बीकानेर 334003

Bharatiy Darshan Evam Viggyan Ka Tulnatmak Tattvavlochan (Hindi)
Edited by Swami Samvit Subodhgiri ₹ 50

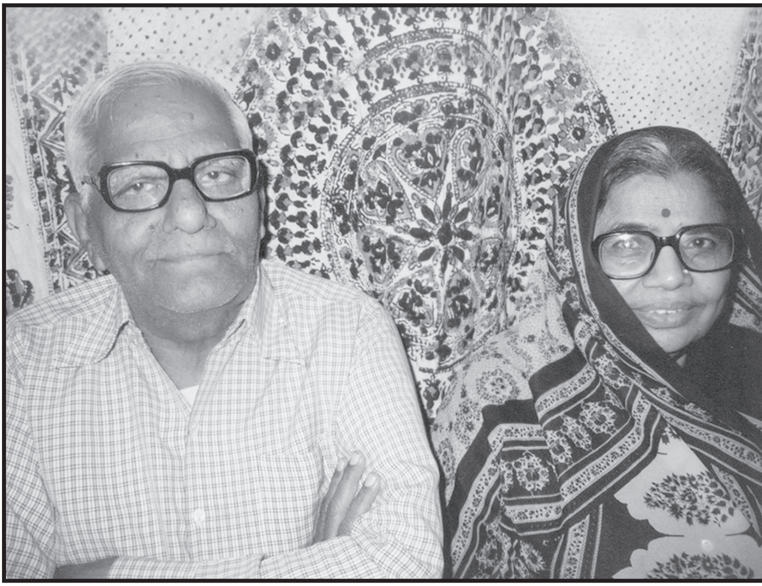
आशीर्वचन

भारतीय संस्कृति का आधार सनातन धर्म है। सनातन का अर्थ है जो आदि और अन्त रहित है। अतः यह धर्म अनादि काल से चला आ रहा है और अनन्त काल तक रहेगा। इस धर्म को अपनाने वाले को भी यह धर्म 'सनातन' की प्राप्ति करा देता है। ब्रह्म को ही वेदों में सत्य या सनातन कहा है। सनातन धर्म पर आधारित होने के कारण भारतीय संस्कृति भी सनातन संस्कृति है। भारतीय संस्कृति ओंकार-मूलक है। ओंकार ही ब्रह्म है, ओंकार ही आत्मा है, ओंकार ही जगत् है, ओंकार से भिन्न और परे किसी अन्य की सत्ता ही नहीं है। ओंकार से ही सारे वेद प्रकट हुए हैं। वेद अपौरुषेय हैं, अनन्त हैं, सनातन हैं। संस्कृति का विस्तार वेदों में प्रतिपादित कर्मकाण्ड, उपासना-काण्ड और ज्ञानकाण्ड के अनुसार हुआ। संस्कृति के संवाहक ऋषियों ने मानव मात्र के अभ्युदय और निःश्रेयस को प्रदान करने वाले जीवन-दर्शन और जीवन-विज्ञान को सारे विश्व में फैलाया। भारत-भूमि को इस संस्कृति-प्राकट्य और प्रसार के मूल-स्थान होने का गौरव प्राप्त है। इस संस्कृति-वीणा की दिव्य झंकार तो 14 भुवनों के आरपार होकर वैकुण्ठ, कैलास और मणिपूर व्यापिनी है।

अवतारों की लीलास्थली एवं ऋषियों की तपोभूमि भारत में संस्कृति का प्रवाह कभी अवरुद्ध नहीं हुआ। संकट के समय में जब इसका बाह्य रूप प्रक्षीण हुआ तब भी यह अन्तःपयस्विनी होकर सतत प्रवाहित होती रही।

प्रस्तुत ग्रंथ में संस्कृति की इस अमरता और इसके वैश्विक रूप का सम्यक् दर्शन होता है। प्रखर मनीषी और उद्‌भट विद्वान् प्रो. हरवंशलाल ओबराय एक चल-विश्वविद्यालय व चल-पुस्तकालय होने के साथ-साथ ब्रह्मविद्या के श्रेष्ठ विद्यार्थी भी थे। एक स्थान पर स्थिर होकर लेखन कार्य में संलग्न रहना उनके स्वभाव में नहीं था। उन्होंने स्वयं लिखने से अधिक लिखवाया और उससे भी अधिक प्रवचनों में अभिव्यक्त किया। उनके द्वारा अभिव्यक्त बहुमूल्य सामग्री को स्वामी श्री सुबोधगिरिजी ने वर्षों तक संभाल कर रखा। संन्यास के पूर्व वे अनेक वर्षों तक प्रो. ओबराय के शिष्य बन कर रहे। उन्होंने सत्-शिष्य बन कर प्रो. ओबराय की सेवा की, उपासना की और उनसे अध्यात्म, धर्म, संस्कृति, इतिहास आदि अनेक विषयों का प्रामाणिक एवं दुर्लभ ज्ञान प्राप्त किया। प्रो. ओबराय ने अपनी प्रखर प्रतिभा, अनुसंधानात्मक वृत्ति तथा संश्लेषक व विश्लेषक प्रज्ञा द्वारा भारतीय संस्कृति के अनेक अज्ञात पक्षों का पता लगाया था। उनकी बहुत कुछ सामग्री तो उनके पश्चात् बचाई नहीं जा सकी। किन्तु सुबोधगिरिजी ने अपने पास की सामग्री को तथा कई अन्य स्रोतों से भी उनकी रचनाओं को एकत्र करके उन्हें लोक कल्याण के लिये प्रकाशित करने के संकल्प को जीवित रखा। प्रभुकृपा से अब उनका संकल्प पूर्ण होने जा रहा है। यह प्रकाशन प्रो. ओबराय के प्रति उनकी सच्ची श्रद्धांजलि है। प्रभु से प्रार्थना है कि वे निरन्तर ज्ञानार्जन करते हुए ब्रह्मविद्या के आलोक को प्राप्त करें।

—परम पूज्य गुरुदेव स्वामी संवित् सोमगिरि



स्मृति शेष

माधोदास-बसन्तीदेवी व्यास

सौजन्य

हनुमानप्रसाद व्यास

प्रकाशकीय

इस लेख में भारतीय दर्शन व पाश्चात्य विज्ञान का तुलनात्मक अध्ययन किया गया है। तत्त्व के प्रति भारतीय और पाश्चात्य अवधारणा में क्या मूलभूत अन्तर है, विकासवाद के सन्दर्भ में भारतीय एवं पाश्चात्य अवधारणा में क्या विभेद हैं? अपरा विद्या, विज्ञान के प्रति भारतीय दृष्टि क्या है? आधुनिक पाश्चात्य विज्ञान की खोज क्या है? और उसके निष्कर्ष कैसे भारतीय दर्शन के, वेदान्त के निकट आते जा रहे हैं। जैसे विज्ञान आगे बढ़ रहा है, भारतीय धर्म-दर्शन-संस्कृति के निकट आता जा रहा है। आज वह वेदान्त की ड्योढ़ी पर, मन्दिर के गर्भ गृह के बाहर खड़ा है। जिस दिन विज्ञान Energy के स्वरूप को चेतन या चेतनामय मान लेगा, अनुभूति कर लेगा उस दिन विज्ञान की स्वतन्त्र सत्ता शेष नहीं बचेगी, वह पूर्व की भाँति दर्शन की एक शाखा में परिणत हो जायेगी। और आज सचमुच में बहुत से चोटी के वैज्ञानिक जैसे सर जेम्सजीन्स, एडिंगटन, आइंस्टाइन, श्रोडिंजर, प्लाक प्रभृति महान् वैज्ञानिक पदार्थ से परे किसी चैतन्य सत्ता में विश्वास करने लगे हैं। तभी तो प्रथम अणु विस्फोट के समय ओपेनहाइमर को भगवद्गीता का श्लोक याद आता है। श्रोडिंजर एवं एडिंगटन अपनी अनेक पुस्तकों में सांख्य, वेदान्त एवं योगदर्शन का हवाला देते हैं। वर्तमान समय में केपरॉ अपनी अनेक प्रसिद्ध पुस्तकों में विज्ञान के निष्कर्षों के साथ वेदान्त का साम्य दर्शाते हुए योग दर्शन, वेदान्त की अनुशंसा करते हैं। स्पष्ट है जैसे-जैसे विज्ञान आगे बढ़ रहा है भारतीय दर्शन की सत्यता प्रकट होती जा रही है।

यह लेख डॉ. हरवंशलाल ओबराय समग्र खण्ड चार से संकलित है। इस पुस्तक का समस्त व्ययभार श्रीमान् हनुमानप्रसादजी व्यास ने सहर्ष ग्रहण किया है। प्रभु की कृपा उन पर सदैव सपरिवार बरसती रहे। हर बार की तरह सांखला प्रिण्टर्स का प्रिंटिंग कार्य में सौहार्दपूर्ण सहयोग एवं परमपूज्य गुरुदेव स्वामी संवित् सोमगिरिजी महाराज के आशीर्वाद से यह पुस्तक प्रकाशित हो रही है।

शिवाकांक्षी

—स्वामी संवित् सुबोधगिरि
सम्पादक व संकलनकर्ता
मो. 09413769139

अनुक्रम

भारतीय दर्शन एवं पाश्चात्य विज्ञान में तत्त्वों का तुलनात्मक तत्त्वावलोचन

प्राय: आधुनिक विज्ञान से तनिक परिचित होने वाले अध्येता तथा आलोचक यह प्रश्न उठाते हैं कि भारतीय दर्शन में जिन पांच तत्त्वों (पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश) को सारी सृष्टि का आधारभूत मसाला माना गया है वे आधुनिक विज्ञान की खोजों से तत्त्व ही नहीं माने जा सकते हैं। उदाहरण के रूप में, भारतीय दर्शन में जल को तत्त्व माना गया है। उसे विज्ञान तत्त्व न मानकर दो तत्त्वों का (ऑक्सीजन एवं हाइड्रोजन का) मिश्रण मानता है। इसी प्रकार विज्ञान में पृथ्वी कोई एक तत्त्व है ही नहीं। पृथ्वी पर प्राप्त होने वाली धातु और अधातु में अनेक तत्त्व हैं। पृथ्वी उन सबका सम्मिश्रण है। आधुनिक विज्ञान ने अग्नि को भी तत्त्व नहीं माना है। हां, भौतिकी में ताप को ऊर्जा का एक प्रकार माना गया है। विज्ञान ने वायु को भी एक तत्त्व नहीं माना है। वरन् उसमें अनेक गैसों का सम्मिश्रण माना है। विज्ञान की शब्दावली में आकाश नाम का कोई तत्त्व नहीं है। किन्तु भौतिकी में Space (देश), Empty space (खाली स्थान), Vacuum वायु शून्य स्थान, Ether ईथर (तारों और ग्रहों के बीच का खाली स्थान) आदि शब्द प्रयोग किये जा रहे हैं। जो आकाश तत्त्व की ओर इंगित करते हैं।

भारतीय दर्शन में पद, प्रत्यय एवं शब्दावली में अन्तर—वास्तव में भारतीय दर्शन और पाश्चात्य विज्ञान के दृष्टिकोण और अध्ययन शैली में अन्तर है। दोनों के अध्ययन के उद्देश्य एवं पद, प्रत्यय, शब्दावली एवं परिभाषा में भी अन्तर है। अत: दोनों के मौलिक तत्त्वों को अलग-अलग समझ लेने से तुलना से पैदा होने वाली भ्रान्ति दूर हो जाती है। विज्ञान में Element शब्दप्रयोग किया गया है। तत्त्व शब्द नहीं। उसका हिन्दी अनुवाद तत्त्व शब्द कर देने से और भारतीय दर्शन के साथ मिलान करने से भ्रान्ति पैदा हो जाती है। जैसे अंग्रेजी के Lady finger का शाब्दिक अर्थ नारी की उंगली लगाने से तथा petty coat का अर्थ छोटा कोट लगाने से अर्थ का अनर्थ हो जाता है। विज्ञान का Element शब्द और भारतीय दर्शन का तत्त्व शब्द दोनों भिन्न-भिन्न उद्देश्यों के लिए भिन्न-

भिन्न दृष्टिकोण से प्रयोग किये गये शब्द हैं। यूनान में प्रारम्भिक काल में सब ज्ञान-विज्ञान philosophy के अन्तर्गत ही माना जाता था। अत: पाइथोगोरस, आर्कीमिडिज और आइंस्टीन अपनी वैज्ञानिक खोजों के उपरान्त भी दार्शनिक माने जाते थे। अरस्तू ने भिन्न-भिन्न विज्ञानों का वर्गीकरण किया। किन्तु मध्यकाल तक वैज्ञानिक विषयों को भी philosophy नाम दिया जाता रहा। न्यूटन के बाद यूरोप में जब विज्ञान का पुनर्जन्म हुआ तब धीरे-धीरे विज्ञान को दर्शन से अलग विषय के रूप में विकसित किया जाने लगा। विज्ञान ने भौतिक जगत् की वस्तुओं का विश्लेषण कर भौतिक सत्य खोजने का प्रयास किया। विज्ञान को दो वर्गों में बांट दिया गया—

(क.) Positive Science=तथ्यपरक विज्ञान

(ख.) Normative Science=Norm Standamal, Ideal आदर्शपरक विज्ञान।

इसके आगे तीन मान दिये गये—

Ideal of truth का अध्ययन करने वाला Logic

Goodness=Ethics

Beauty=Aesthetic

उन्होंने Normative Science (Logic, Aesthetics, Ethics) को विज्ञान न मानकर केवल philosophy या दर्शन ही माना। और केवल Positive Science तथ्यपरक विज्ञान को दर्शन से अलग कर विज्ञान कहना प्रारम्भ किया। वैसे विज्ञान शब्द विशेषज्ञान, अनुभूति के ज्ञान, प्रत्यक्ष उपलब्धि के ज्ञान, अन्तर्ज्ञान intuition, तर्कातीत ज्ञान, बुद्धि से भी ऊपर वाला ज्ञान, सत्य के साक्षात्कार के अर्थ में वेद, उपनिषद, गीता आदि में बार-बार प्रयोग हुआ है। किन्तु आधुनिक काल में विज्ञान (Science) केवल भौतिक जगत् में तथ्यों के अनुसंधान का अध्ययन माना जाता है। इस अर्थ में इसका परम सत्य से कोई सम्बन्ध नहीं है।

तथ्य Facts

तथ्य देश और काल में होने वाली वस्तुएं हैं या घटने वाली घटनाएं हैं। यह देश (Space) में आबद्ध होता है। देश इसे सीमित बनाता है। भौतिक वस्तुएं एकदेशीय होती है। क्योंकि उसकी परिभाषा है कि जो वजन रखे और स्थान घेरे। उदाहरणस्वरूप—

सत्य Truth

सत्य सार्वदेशिक वस्तु या घटना को कह सकते हैं। जांच करने पर कोई वस्तु सार्वदेशिक नहीं हो सकती। कोई भी व्यक्ति एक ही समय में सब स्थानों पर नहीं हो सकता है। कोई भी घटना एक ही समय सभी स्थानों पर नहीं घट सकती। केवल चेतन तत्त्व ही

फूल, अटल बिहारी वाजपेयी, मंत्रियों द्वारा शपथ ग्रहण आदि। तथ्य एकदेशीय सत्य है। एक स्थान में सुख है तो दूसरे स्थान पर इसके विपरीत दु:ख है।	सार्वदेशिक, सर्वव्यापक अत्र सत्यम्, तत्र सत्यम्, यत्र सत्यम् और सर्वत्र सत्यम् है।
तथ्य सार्वकालिक न होकर किसी एक काल विशेष की सीमा में आबद्ध होता है। वह काल से घिरा होता है। इसलिए काल उसे खा जाता है। तथ्य क्षणिक, परिवर्तनशील एवं नश्वर होता है, जैसे—रामनवमी उत्सव, जे.पी. आन्दोलन, शरीर, राजा ययाति का यौवन।	सत्य सार्वकालिक होता है। किसी काल विशेष में आबद्ध नहीं होता। आदि सत्यम्, युगादि सत्यम्, भवति सत्यम्, भविष्यति सत्यम्। सत्य सब कालों में, काल के तीनों विभागों भूत, वर्तमान, भविष्यत् में सदा एकरस बना रहता है। इसलिए काल उसे खा नहीं सकता। इसी कारण उसे अकाल भी कहते हैं। सत् श्री अकाल का भी यही अर्थ है। शरीर नित्य परिवर्तनशील है। शुक्र के कीड़े से लेकर श्मशान की धूलि तक। पर उसमें अनुस्यूत मैं तत्त्व प्रारम्भ से अन्त तक एकरस बना रहता है।
तथ्य एकरूप या कुछ रूप होता है यानी वह दूसरी वस्तु या रूप से कट जाता है।	सत्य सर्वरूप होता है। वही सभी में अनुस्यूत होता है। अत: वह किसी दूसरे रूप से कटता नहीं। इसलिए उपनिषदों में एक को जानने से सबको जानने की प्रतिज्ञा है।
तथ्य सार्वजनीन न होकर एकजनीन अर्थात् किसी व्यक्तिविशेष या कुछ व्यक्तिविशेष या कुछ वस्तुओं या घटनाओं से सम्बन्धित यानी सीमित होता है जैसे सुशीलजी का विवाह, इन्दिराजी की पराजय, जनता पार्टी की विजय आदि।	सत्य सार्वजनीन होता है। सूर्य का प्रकाश बिना किसी भेदभाव के सबको ज्योति देता है। सत्य पर एक व्यक्ति या कुछ व्यक्तियों का एकाधिकार नहीं है।

अत: तत्त्व वही है, जो सार्वदेशिक, सार्वकालिक, सर्वरूप एवं सार्वजनीन हो। विचार करने पर वह चेतन आत्मा या ब्रह्म ही ठहरता है।

विज्ञान मात्र तथ्यों का अध्ययन करता है सत्य का नहीं। तथ्य सत्य की अपेक्षा कुछ स्थूल होने के कारण वैज्ञानिक की प्रयोगशाला में, उसकी परखनली में, उसके यंत्रों में, उसके मापन और तौलन में कुछ मात्रा में आ सकता है। किन्तु सत्य वैज्ञानिक की प्रयोगशाला में, उसकी परखनली, उसके यंत्रों और मापन-तोलन के उपकरणों की पकड़ में न आकर स्वयं परखने वाले और जांचने वाले वैज्ञानिक के भीतर उस चेतना के रूप में है जो उसे आगे तथा और आगे, ऊंचे तथा और ऊंचे अनुसंधान की प्रेरणा देता रहता है। तथ्य तो वैज्ञानिक की प्रयोगशाला की वस्तु है। किन्तु, सत्य तो प्रयोग करने वाले की मूल चेतना है। जो वैज्ञानिक के भीतर है। तथ्य यंत्रों में है, किन्तु सत्य तो यंत्री में है। वैज्ञानिक तथ्यों से खेल करता है। किन्तु सत्य वैज्ञानिक की इस सारी अनुसंधान लीला को शक्ति प्रदान करता है। वैज्ञानिक तथ्यों को नचा रहा है। किन्तु सत्य वैज्ञानिकों को नचा रहा है। वैज्ञानिक के लिए जिस प्रकार भिन्न-भिन्न वस्तुएं, धातु और अधातु उसके खेल खिलौने के समान है। उसी प्रकार परम सत्य (चेतन सत्ता) के लिए पाइथोगोरस, आर्कीमिडिज, न्यूटन, आइंस्टीन, श्रोडिंजर, ओपनहाइमर आदि कठपुतलियों के समान हैं। जो चेतना के प्रकाश से बड़े-बड़े अनुसंधान करते हैं और चेतना के विलग हो जाने पर धूल में मिल जाते हैं। प्रयोगशाला में तथ्य स्वयं कुछ भी रहस्य नहीं बतलाते। उन पर प्रयोग करके, जांच-पड़ताल करके अनुसंधान करना पड़ता है। किन्तु मापन-तोलन एवं परीक्षण के यंत्र बिना वैज्ञानिक अपने आप कुछ भी अनुसंधान नहीं कर सकते हैं। इसी प्रकार वैज्ञानिक भी बिना चेतन सत्ता के सहयोग के (सुप्त अथवा मृत) कुछ भी अनुसंधान नहीं कर सकता। अतः चेतन सत्ता ही सच्चा वैज्ञानिक है जिसकी कृपा से सब वैज्ञानिक अनुसंधान सम्भव होते हैं। किन्तु आधुनिक पाश्चात्य विज्ञान की दृष्टि बहिर्मुखी होने के कारण उसे तथ्य तो दिखलाई देते हैं, किन्तु तथ्यों को दिखलाने वाला, तथ्यों के सम्बन्ध समझाने वाला, तथ्यों का विश्लेषण-संश्लेषण करने वाला, तथ्यों का अनुसंधान कर विज्ञान का भण्डार भरने वाला सत्य नहीं दिखाई देता।

पराविद्या-अपराविद्या—भारतीय दर्शन ने तथ्यों से परे, उस परम सत्य की खोज के लिए धन, जन, यौवन, राजवैभव, परिवार, ऐश्वर्य एवं सर्वस्व को न्योछावर करने की महान् साधना की है। जगत् के तथ्यों के ज्ञान को अपराविद्या कहा गया है और स्वयं ज्ञाता के ज्ञान को पराविद्या कहा गया है। महर्षि रमण का कथन है कि जब तक ज्ञाता स्वयं अज्ञात है तब तक सब ज्ञान अज्ञान है। स्वामी शिवानन्दजी सरस्वती का सहज सरल उपदेश है—**Eat a little, drink a little, sleep a little, think a little, serve a little, meditate a little, enquire who am I and be free, know the knower, see the seer, perceive the perciever and be free.**

आधुनिक विज्ञान के भौतिक तत्त्वों का वर्गीकरण—प्रारम्भ में विज्ञान ने भौतिक वस्तुओं को सत्य मान लिया। विज्ञान ने पदार्थ की परिभाषा की—जो वस्तु जगह घेरती है और वजन रखती है उन्हें पदार्थ कहते हैं। धीरे-धीरे वैज्ञानिकों ने खोजा कि जो पदार्थ जैसा दिखाई देता है मूल रूप में वैसा नहीं है। प्रयोगशाला में उनका विश्लेषण करने पर उनमें दो या अधिक वस्तुओं का मिश्रण पाया गया। जिन वस्तुओं का आगे विश्लेषण प्रयोगशाला में सम्भव नहीं हो सका उसे मौलिक वस्तु, बुनियादी वस्तु Elementry substance या element कहा गया है। जैसे सोने के आभूषण को तपाने, गलाने या तेजाब में डालने से उसमें मिश्रित अन्य धातुएं जल जाती हैं, घुल जाती हैं या काली पड़ जाती हैं। किन्तु सोना सोना ही रहता है। उसका और आगे विश्लेषण सम्भव नहीं होता। इसलिए इस सरल मौलिक वस्तु सोना को एक Element मान लिया गया। इस प्रकार चांदी को, तांबा को, लोहा को Element माना गया। इन आधारभूत भौतिक वस्तुओं को दो वर्गों में विभाजित किया गया धातु और अधातु (Metals and Non metals)। शेष सब धातुएं ठोस हैं, केवल पारा द्रव है। पिघलने पर ठोस धातुएं द्रव बन जाती हैं। किन्तु अभी तक कोई धातु गैस के रूप में उपलब्ध नहीं हुई है।

अधातुओं में तीन प्रकार की वस्तुएं हैं—ठोस, द्रव और गैस। गंधक, कार्बन, मैंगनीज आदि ठोस अधातु हैं। अमोनिया द्रव (Liquid) अधातु है तथा हाइड्रोजन, ऑक्सीजन, हीलियम आदि गैसें अधातु हैं।

धातु शब्द का मूलार्थ—भारतीय दर्शन में धातु शब्द का अर्थ भिन्न है। धातु का अर्थ है धारण करने वाला। कुछ दार्शनिकों ने शरीर को धारण करने में सप्त धातु और कुछ ने अष्ट धातु माने—रक्त, मांस, मज्जा, मेद, अस्थि, त्वचा, चर्म और वीर्य। पश्चिमी विज्ञान के धातु भारतीय दर्शन की धातु से भिन्न हैं। भारतीय कोश में भी मूर्तियों के धारण करने के कारण सोना, चांदी आदि के आभूषणों को धातु कहा गया है। किन्तु भारत में धातु का अर्थ जितना व्यापक है उतना पश्चिम के Metal शब्द का नहीं। जिस प्रकार मानव शरीर अष्ट धातु का बना हुआ है, उसी प्रकार देवताओं की मूर्तियां भी अष्ट धातु की बनायी जाती थी जिसमें लाल रंग का तांबा, वीर्य के श्वेत रंग की चांदी, त्वचा के रंग का सोना आदि-आदि आठ धातुएं मिलाकर बनाई गई मूर्ति बड़ी शुभ एवं शक्तिशाली मानी जाती थी।

Element सरल वस्तु तथा Compound मिश्रण—पश्चिम में रसायन विज्ञान ने भिन्न-भिन्न रसायन बनाने के लिए वस्तुओं की खोज की। जो रसायन एक से अधिक वस्तुओं के मिश्रण से बने उसे मिश्र या मिश्रण compound कहा जाने लगा। मिश्रण के विश्लेषण से जो सरल वस्तु या रसायन बच जाती है उसे simple element सरल वस्तु, बुनियादी वस्तु कहा जाने लगा।

अत: पश्चिमी विज्ञान का उद्देश्य रसायनों के मिश्रण के विश्लेषण का ही था। प्रकृति की अन्तिम व्याख्या का नहीं था। विज्ञान की ही दूसरी शाखा भौतिकी में इन पदार्थ और ऊर्जा का अध्ययन किया जाता है। पदार्थ चाहे element हो या compound और ऊर्जा चाहे पृथ्वी से प्राप्त हो या जल से या अग्नि से, वायु से या ब्रह्माण्ड की किसी अन्य शक्ति से। भौतिकी पंच महाभूतों के प्रयोग और सदुपयोग में अधिक रुचि लेती है। जीव विज्ञान में भी रसायन के elements का विशेष महत्त्व नहीं है। नक्षत्र विज्ञान, गणित विज्ञान, भूगोल विज्ञान में भी element की विशेष चर्चा ही नहीं है। औषधि विज्ञान में इसकी मामूली चर्चा है किन्तु महत्त्व औषधि का अधिक है element का कम। कोई भी element शुद्ध धातु या अधातु रूप में औषधि में काम नहीं आता। औषधियां कई elements के मिश्रण से बनती हैं।

Element का अध्ययन मुख्य रूप से रसायन विज्ञान का ही विषय है—elements का अध्ययन मुख्य रूप से रसायन शास्त्र के लिए ही उपयोगी है। उसमें भी प्रारम्भ में 30-32 की सूचि बनाई गई, धीरे-धीरे 50-52 तक। आजकल यह 92-94 या इससे भी अधिक की हो गई। कभी हीलियम नाम की गैस का वैज्ञानिकों को पता ही नहीं था। इसी प्रकार यूरेनियम, रेडियम आदि के नाम भी पिछले कुछ वर्षों में ज्ञात हुए हैं। रसायन विज्ञान की elements की सूचि नयी-नयी खोजों के साथ और भी बढ़ती जाएगी। क्योंकि सृष्टि के रहस्यों का क्षेत्र काफी बड़ा है और मूल वस्तुओं की कोई कमी भी नहीं है।

भारतीय दर्शन में प्रकृति के तत्त्वों का विश्लेषण पिण्ड और ब्रह्माण्ड की व्याख्या के लिए—रसायन विज्ञान की elements की सूचि की तुलना में भारतीय दर्शन का प्रकृति का तात्त्विक विश्लेषण किसी और उद्देश्य से है। यह उद्देश्य है पिण्ड और ब्रह्माण्ड की व्याख्या, न कि किसी रसायन के निर्माण या विश्लेषण की आवश्यकता। यहां हमारा उद्देश्य सच्चे अर्थ में तात्त्विक है न कि मात्र व्यावहारिक। पश्चिमी विज्ञान प्रकृति के एक-एक अंग का अलग-अलग अध्ययन कर अलग-अलग विज्ञान की शाखाएं रच लेता है। किन्तु समग्र प्रकृति की न चर्चा करता है और न व्याख्या। विज्ञान प्रकृति के कैसे (How) का उत्तर देने का प्रयास करता है। किन्तु प्रकृति के क्यों अर्थात् Why का कोई उत्तर न देता है न देने का प्रयास करता है और न ही दे सकता है।

पश्चिमी विज्ञान में प्रकृति का खंडश: अध्ययन, भारतीय दर्शन में प्रकृति का समग्र अध्ययन—प्रकृति के खण्डों के अध्ययन से समग्र प्रकृति का चित्र सामने नहीं आता। जैसे कि पृथ्वी के खण्डों के अध्ययन से पृथ्वी कहीं चपटी दिखलाई देती है। कहीं पर्वत हैं। कहीं गहरे खड्डे हैं। कहीं समुद्र है। किन्तु,

अन्तरिक्ष में रॉकेट से चित्र लेने पर सारी पृथ्वी एक सुन्दर गोले के रूप में दिखलाई पड़ती है। हाथी के अंगों को छूकर अनुमान लगाने वाले 6 अंधे जिस प्रकार हाथी की सूंड, कान, जंघा, पेट, पूंछ आदि को अपने-अपने अनुमान से अजगर, पंखा, स्तम्भ, दीवार, रस्सी आदि मानते रहे हैं। उसी प्रकार समस्त प्रकृति को दर्शन की समग्र दृष्टि से देखे बिना उसके अंगों के आंशिक अध्ययन से विज्ञान की शाखाओं की रचना निश्चय ही त्रुटिपूर्ण रह जाती है।

विज्ञान द्वारा प्रकृति के जड़ रूप का अध्ययन तथा भारतीय दर्शन द्वारा उसके मूल में छिपे चेतन तत्त्व की खोज—विज्ञान प्रकृति के प्रकृत जड़रूप से ही संतुष्ट रहता है। उसे प्रकृति के मूल में छिपे किसी चेतन तत्त्व की खोज न रुचती है न पचती है। यदि वे चेतन तत्त्व की खोज में रुचि लें तो तथ्यवादी विज्ञान से परे चला जाए और यदि प्रकृति के गर्भ में छिपे हुए किसी चेतन तत्त्व को जान लें और मान लें तो उनका भौतिकवाद का सारा भवन ही धराशायी हो जाएगा।

परा और अपरा प्रकृति—इसलिए वैज्ञानिक अपरा प्रकृति के किसी एक अंश का अध्ययन करके ही संतुष्ट रहता है और विज्ञान की भिन्न-भिन्न शाखाओं की अलग दुकान बिना किसी एकसूत्रीकरण के चलती रहती है। अपरा का समग्र रूप भी उनके सामने आता ही नहीं और अपरा से परे परा प्रकृति की उनको कल्पना भी नहीं जो कि परमेश्वरीय शक्ति, भगवती शक्ति, अदिति माता, महालक्ष्मी, महादुर्गा, महासरस्वती, गायत्री माता, सावित्री माता, ईश्वर की सर्जन शक्ति आदि भिन्न-भिन्न नामों से मानी जाती है। जिस प्रकार सूर्य से उसका प्रकाश, चन्द्र से चाँदनी, नभ से नीलिमा, अग्नि से तेज अलग नहीं किया जा सकता उसी प्रकार परमेश्वर की परा प्रकृति परमेश्वर से विलग करके जानी ही नहीं जा सकती।

प्रकृति परमेश्वर की सर्जन शक्ति—परमेश्वर का जब संकल्प होता है 'एकोऽहं बहु स्याम्' तो उसकी संकल्प शक्ति ही परा प्रकृति है। वह कोटि-कोटि ब्रह्माण्डों की रचना करती है और तीन गुणों और पंच महाभूतों से अनेक वस्तुओं एवं व्यक्तियों को रचकर उनके स्थूल कार्य-व्यापार का नियमन तीन गुणों एवं पंचभूतों को सौंपकर स्वयं उपराम हो छिप जाती है। साधारण व्यक्ति को जड़ जगत् की जड़ वस्तुएं दिखाई देती है, भौतिक वैज्ञानिक इस जड़ जगत् का नियमन करने वाली अपरा प्रकृति के एक-एक अंश का अध्ययन कर अपने-अपने दृष्टिकोण से विज्ञान की शाखाएं रच लेता है। समग्र अपरा प्रकृति का अध्ययन भी वह नहीं कर पाता। समग्र अपरा प्रकृति के अध्ययन के लिए सांख्य और वैशेषिक दर्शन की शरण में जाना होगा। विज्ञान तथ्यों को प्रयोगशाला में लाकर परखनली में परीक्षण करके अपना निष्कर्ष निकालता है। सारी प्रयोगशाला तो इस विशाल

प्रकृति के छोटे-छोटे खण्डों में है। यदि समग्र प्रकृति का ही अध्ययन करना हो तो उसके लिए वैज्ञानिक प्रकृति से अधिक बड़ी प्रयोगशाला कहां से लाएगा? इसका अध्ययन तो शुद्ध चिन्तन से ही हो सकता है, जो दर्शन का मार्ग है।

प्रकृति में नैतिक उद्देश्य—जब विज्ञान प्रकृति में कोई आध्यात्मिक मूल को नहीं मानता तब प्रकृति में नैतिक उद्देश्य को वह कैसे मान सकता है। नैतिकता आध्यात्मिकता की ही सीढ़ी है। प्रकृति में एक नैतिक उद्देश्य का भाव यह है कि प्रकृति मात्र जड़, अंध-शक्ति नहीं है जो बिना किसी नैतिक उद्देश्य के और बिना किसी सर्वोच्च भलाई का विचार किये ऊटपटांग व मनमानी उथल पुथल मचाती रहती है। वरन् उस पर विश्व की नियामक किसी चेतन सत्ता का शासन है। और वह जीवों की भलाई के लिए और उनके विकास एवं शोधन के लिए भले को भला और बुरे को बुरा फल देते हुए अपनी लीला कर रही है।

(क) बच्चे के जन्म से पहले माता के स्तनों में जो दूध उतार देती है और बच्चे के दांत निकल आने पर माता के स्तनों की धारा को सुखा देती है।

(ख) जो सज्जनों की बड़े विचित्र ढंग से रक्षा करती है और दुष्टों को बड़े अनोखे ढंग से दण्ड दे देती है। वह प्रकृति मात्र जड़, अंध-शक्ति नहीं है वरन् नैतिक शासनकर्त्री, कर्मफलदात्री शक्ति है।

(ग) महाभारत के महासमर में जहां 18 अक्षौहिणी सेना धरती में समा गई। हाथी, घोड़े, रथों की भाग-दौड़ से, सैनिकों की मारधाड़ से, लोथों के अम्बार से और रक्त की कीचड़ भरी नदी से सारा कुरुक्षेत्र धर्मक्षेत्र, संकट क्षेत्र बन गया था। वहां एक टिटिहरी ने अण्डे दिये थे और दौड़ते हुए हाथियों के पांव के नीचे मेरे अण्डे दब न जाएं इसके लिए प्रभु से मूक प्रार्थना की थी। वहीं पर एक वेग से भागते हुए हाथी के गले का बड़ा घण्टा गिर गया जो अण्डों पर न गिरकर अण्डों को चारों ओर से सुरक्षित रखने के लिए कवच बन गया और संसार का सबसे बड़ा युद्ध समाप्त होने के पश्चात् रक्तभरी लोथों के नीचे से घण्टे को उठाने पर अण्डों से प्रकटे टिटिहरी के बच्चे सुरक्षित व जीवित बच गये।

(घ) एक व्याध ने एक टिटिहरी को मारने हेतु बाण साधा। उधर एक बाज भी उस छोटे पक्षी को दबोचने के लिए झपट्टा मार रहा था। यदि टिटिहरी उड़े तो बाज की पकड़ में आ जाए। यदि वृक्ष के पत्तों में वहीं बैठी रहे तो व्याध के तीर से मर जाए। ऐसी अवस्था में पक्षी ने प्रभु से विनती की। अचानक जंगल से एक सर्प निकला। उसने व्याध को डस लिया। व्याध का निशाना चूक गया तथा तीर बाज को लग गया। नन्हे पक्षी को जो प्रकृति बचा रही है क्या वह जड़ अन्ध-शक्ति ही है?

(ङ) मेरे मित्र श्री हिंगोरानी कराची में इंजीनियर थे। बहुत वर्षों के पश्चात् एक बार शिमला में संन्यासी रूप में एक व्यक्ति को देखकर मुझे लगा कि कहीं यह हिंगोरानी तो नहीं है। कुछ क्षण ध्यान से देखने पर दोनों ने एक-दूसरे को पहचान लिया। संन्यास की कहानी पूछने पर उन्होंने जो बताया वह प्रकृति के नैतिक उद्देश्य का ज्वलंत प्रमाण है। विभाजन से पूर्व कराची से बम्बई एक बहुत तेज गाड़ी चलती थी जिसे कराची बम्बई मेल कहते थे। एक बार वे उसमें यात्रा कर रहे थे। प्रथम श्रेणी के डिब्बे में उनके साथ एक धनी सेठ अपनी पत्नी एवं नन्हे बच्चे के साथ बैठा था। गाड़ी जब पूरे वेग में थी और आगे 50-60 मील तक कोई स्टेशन नहीं था। अचानक डिब्बे के शौचालय वाले कोष्ठ से एक लम्बे-चौड़े शरीर का पठान निकला जिसने पिस्तौल लटका रखी थी और दोनों हाथों में छुरा लिए हुए था। उसने तुरन्त सेठ की पत्नी को छुरा दिखाकर गहनों का बक्सा छीनकर गाड़ी की खिड़की से बाहर पटक दिया। दूसरे क्षण सेठानी की गोद से दुधमुंहा बच्चा छीनकर उसके गले की सोने की कंठी के लोभ में उसे भी खिड़की से बाहर पटक दिया। तीसरे क्षण वह स्वयं उछलकर तेज दौड़ती गाड़ी से छलांग लगाकर निकल गया। यह तीनों कार्य तीन क्षणों में इतनी जल्दी में हुए कि इसके पहले कि श्री हिंगोरानी गाड़ी की जंजीर खींचकर उसे रोक सकें पठान उछलकर भाग भी गया। जंजीर खींचकर गाड़ी रुकते-रुकते कई मील आगे निकल चुकी थी। सेठ-सेठानी मानसिक आघात से बेहोश पड़े थे। बीच-बीच में होश आने पर सेठानी भयंकर चीत्कार करती थी। गाड़ी पीछे ले जाने पर सबसे प्रथम वह स्थल आया जहां पठान छलांग लगाकर चलती गाड़ी से कूदा था। किन्तु प्रकृति का अद्‌भुत विधान देखा। पठान छलांग लगाते ही सामने एक सिगनल के खम्भे से टकराकर चूर-चूर हो खून से लथपथ मृत पड़ा था। थोड़ा और पीछे जाने पर आभूषण का बक्सा मिला जो पिचक तो गया था, किन्तु टूटा नहीं था। गाड़ी को बार-बार आगे-पीछे ले जाने पर भी बच्चे का अता-पता नहीं मिला। माता की चीत्कार, पिता के आघात और अन्य यात्रियों की चिन्ता से उस काल-रात्रि में जंगल का दृश्य और भी भयावना बन रहा था। अन्त में जब सबने मान लिया कि जंगल में बच्चे को कोई पशु उठाकर ले गया होगा और अब विवशतावशात् गाड़ी को आगे बढ़ाना ही होगा। तब गाड़ी चलने से पूर्व हिंगोरानी रेलवे लाइन के एक ओर लघुशंका करने के लिए बैठा। उसे यह अनुभव हुआ कि निकट में कुछ दूरी पर 'कोई जीव साँस ले रहा है। उसने गाड़ी से टार्च निकालकर उस दिशा में बीस-पचीस कदम जाने पर एक अद्‌भुत चामत्कारिक दृश्य देखा। मां ने बच्चे के एक छोटे से कपड़े की लंगोट लगा रखी थी, जिसको ऊपर एक सेफ्टीपिन से टांका हुआ था। बच्चे की उस लंगोट का पिन बाहर फेंकने पर रेल लाइन के पास वाली

एक झाड़ी के कांटे में अटक गया था जिससे वह लंगोटी एक झूले की तरह बन गयी थी और उस झूले में झूलता हुआ बालक अपना अंगूठा चूस रहा था। उस नन्हे दुधमुंहे शिशु को एक साधारण खरोंच तक भी नहीं लगी थी। उस शिशु के इस बालमुकुन्द रूप में दर्शन कर हिंगोरानी की जीवनधारा ही बदल गई। उसने निश्चय किया कि जिस परमेश्वर की परमेश्वरी शक्ति सृष्टि के कण-कण पर शासन कर रही है मैं उसी की खोज के लिए यह जीवन उत्सर्ग कर दूंगा।

प्रकृति के नैतिक उद्देश्य का परिचय जीवन के पग-पग पर मिलता है और संसार के इतिहास में ऐसे अनन्त उदाहरण हैं और महापुरुषों का जीवन इसका अकाट्य साक्ष्य है।

सृष्टिक्रम ऊर्ध्व से अधः—सृष्टि रचना के क्रम को तैत्तिरीय उपनिषद् में इस प्रकार बताया गया है—'तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः संभूतः। आकाशद्वायुः। वायोरग्निः। अग्नेरापः। अद्भ्यः पृथिवी। पृथिव्या ओषधयः। ओषधीभ्योऽन्नम्। अन्नात्पुरुषः।' उस आत्मा से आकाश उत्पन्न हुआ। आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल, जल से पृथ्वी, पृथ्वी से औषधियां, औषधियों (वनस्पति) से अन्न, अन्न से पुरुष। भारतीय चिन्तन धारा ऊर्ध्व से अधः की तरफ गति करती जाती है। ज्योतिष शास्त्र की परिभाषा में ऊर्ध्व का अर्थ केन्द्र है, अधः का अर्थ परिधि है। ऊर्ध्व ब्रह्म है और अधः प्रकृति है।

केन्द्र और परिधि, परिधि में तीन गुण है—सत्त्व, रज और तम प्रकृति रूपी परिधि के तीन रंग के घेरे हैं। केन्द्र की ओर का भीतर वाला वृत्त श्वेत-शुभ्र रंग का है। वह सत्त्वगुण का चक्र है। उसके बाहर वाला वृत्त लाल रंग का है। वह रजोगुण के कर्म—संघर्ष, भाग-दौड़ का वृत्त है। सबसे बाहर वाला चक्र काले रंग का है। वह आलस्य, निद्रा, प्रमाद (तमोगुण) का चक्र है। केन्द्र और श्वेत दायरे के बीच में परा प्रकृति का प्रकाश है। सृष्टि सूक्ष्म से स्थूल की ओर बढ़ती जाती है। ब्रह्म सूक्ष्मतम होने से अलक्ष्य एवं अगोचर है। वह बिन्दु रूप है जो अपने केन्द्र पर सारी प्रकृति को घुमा रहा है। बिन्दु की लम्बाई-चौड़ाई, मोटाई कुछ नहीं होती। किन्तु उसका अस्तित्व अकाट्य है क्योंकि उसके बिना न कोई रेखा बन सकती, न परिधि और न आकार ही। वह निराकार होते हुए भी सब आकारों का आदिकारण है। ब्रह्म सबसे सूक्ष्मतम है। परा प्रकृति उसी का प्रकाश है जो अपने प्रभाव से पहचानी जाती है। सूर्य के प्रकाश से ही सूर्य का निश्चय होता है। परा प्रकृति का ज्ञान सूक्ष्म बुद्धि तथा आध्यात्मिक अनुभूति द्वारा होता है। त्रिगुणमयी अपरा प्रकृति का ज्ञान बुद्धि द्वारा होता है। तीन गुणों का अनुभव मन द्वारा होता है और तीनों गुणों से पंच तन्मात्रायें प्रकट होती हैं—शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध। इनका ज्ञान मन द्वारा ही होता है और इनकी अनुभूति इन्द्रियों द्वारा होती है। इन्हीं पांच

तन्मात्राओं से पंच महाभूत पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश आदि स्थूल रूप में प्रकट होते हैं।

पंच तत्त्वों का प्रपंच—पंच महाभूत ब्रह्माण्ड में भी व्याप्त है और पिण्ड में भी हैं। इनके पंचीकरण से ही विश्व ब्रह्माण्ड बना है। इसलिए जितना कुछ दृश्य जगत् है उसे पंचभूतों के पंचीकरण का खेल होने के कारण प्रपंच कहते हैं। भौतिक विज्ञान में उनके Element तो अलग-अलग प्राप्त होने वाले सरल पदार्थ है, किन्तु भारतीय दर्शन में पंच महाभूत जिनसे सारी सृष्टि बनी हुई है, एक-दूसरे से मिले हुए समवाय के रूप में ही मिलते हैं। बिना जल के पृथ्वी, बिना अग्नि के जल, बिना वायु के अग्नि और बिना आकाश के वायु कभी नहीं मिलते। अत: पांचों तत्त्व मिले-जुले ही मिलते हैं।

पश्चिम का विकासवाद—भारतीय चिन्तनधारा में हम ब्रह्म से जीव तक के सृष्टि विस्तार को ऊर्ध्व से अध: की ओर गति के रूप में समझते हैं। पश्चिमी विज्ञान में अध: से ऊर्ध्व की ओर विकास माना जाता है। प्रश्न उठता है कि यदि प्रकृति में विकास चल रहा है तो विकास का स्वरूप, विकास का प्रतिरूप Model या मानक (Standard) और विकास की प्रेरक शक्ति और विकास का चरम लक्ष्य क्या है? विकास का दूसरा अर्थ है प्रगति। जिसका शाब्दिक अर्थ है—प्र+गति अर्थात् लक्ष्य की ओर गति। जो गति लक्ष्य के निकट ले जाए उसे ही प्रगति कहा जा सकता है। अन्य किसी को नहीं। लक्ष्य के विपरीत गति को पुच्छ गति, दुर्गति, क्षुद्र गति, अवगति, अपगति, विगति, चक्रगति, कुष्ठ गति, भ्रष्ट गति, नष्ट गति कहा जा सकता है, प्रगति कभी नहीं। अंग्रेजी का Progress शब्द भी प्रगति से बना है तथा समान अर्थ वाला है। Pro का अर्थ प्र (अर्थात् आगे) तथा Gress का अर्थ गति है। लक्ष्य की ओर गति होने पर ही Progress नाम सार्थक होगा। अन्यथा Regress अवनति या Digress चक्र गति। यदि एक मीनार या शिखर निर्माण का उद्देश्य हो तो ज्यों-ज्यों निर्माण कार्य ऊपर की ओर होता जाएगा त्यों-त्यों प्रगति मानी जाएगी और यदि लक्ष्य कुआं खोदने का हो तो जितनी-जितनी खुदाई नीचे की ओर होती जायेगी उतनी कार्य में प्रगति मानी जाएगी। इन दोनों प्रकार के कार्यों में धरती के ऊपर निर्माण और धरती के नीचे खुदाई दोनों विपरीत दिशा में हैं। किन्तु दोनों अपने-अपने लक्ष्य के अनुकूल होने पर प्रगति ही गिनी जाएगी। यदि शिखर निर्माण का लक्ष्य हो और धरती के ऊपर निर्माण की अपेक्षा धरती के नीचे खुदाई करते जाएं तो यह विपरीत गति या अवनति होगी। अत: सिद्ध हुआ प्रगति या विकास लक्ष्यसापेक्ष गति है। बिना लक्ष्यनिर्धारण के किसी भी गति को प्रगति नहीं कहा जा सकता। यात्रा किसी विशेष लक्ष्य को सामने रखकर की जाती है और आवारागर्दी निरुद्देश्य होती है।

यदि डार्विन तथा पश्चिमी विज्ञान प्रकृति में अनिवार्य विकासवाद को मानता है, तो प्रश्न उठता है इस विकास या प्रगति का लक्ष्य या उद्देश्य क्या है? यदि प्रकृति जड़ और अंधी है और गति सोद्देश्य नहीं है तब विकास का प्रश्न ही पैदा नहीं होता। यदि विकास है तब प्रकृति की सारी गति, क्रियाकलाप का कोई उद्देश्य मानना पड़ेगा—किसी भी यात्रा या गति से पहले लक्ष्य या उद्देश्य पूर्वनिश्चित होना चाहिए। यदि प्रकृति में जड़ पदार्थ तत्त्व (धातु-अधातु) आदि ही अन्तिम सत्य हैं, तो अन्तिम लक्ष्य या उद्देश्य किसने निश्चित किया। जड़ वस्तु तो स्वयं धीरे-धीरे गति कर रही है, उसकी लक्ष्य की ओर गति को भी प्रगति या विकास कहते हैं। लक्ष्य से च्युत होने की गति विकास नहीं विनाश है। यदि विकास माना जावे तो जड़ तत्त्व अपनी सारी गति के अन्त में अपने अन्तिम लक्ष्य तक पहुंच पाएगा, किन्तु लक्ष्य का निर्धारण सारी यात्रा के प्रारम्भ होने से पूर्व ही हो जाना चाहिए। अन्यथा प्रगति प्रगति ही नहीं कही जा सकती। रेलगाड़ी की यात्रा प्रारम्भ होने से पहले उसका गन्तव्य स्थान निश्चित होना चाहिए। चन्द्र यात्रा का रॉकेट छोड़ने से पूर्व लक्ष्य चन्द्रमा अस्तित्व में होना चाहिए। रेलगाड़ी या रॉकेट जड़ होने के कारण यात्रा प्रारम्भ करने से पूर्व ही लक्ष्य का निर्माण, निश्चय या निर्धारण नहीं कर सकते। लक्ष्य पूर्वनिश्चित ही होना चाहिए। लक्ष्य गति करने वाले पदार्थ के अतिरिक्त किसी और सत्ता द्वारा निर्धारित होना चाहिए। जो सत्ता गति करने वाली वस्तु उसके प्रारम्भिक रूप, उसकी गति के मार्ग, गति के स्वरूप एवं गति के अन्तिम लक्ष्य तीनों को एक साथ जानता है। अतः विश्वव्यापी चेतन सत्ता के बिना किसी लक्ष्य या उद्देश्य का निर्धारण नहीं हो सकता और लक्ष्य या उद्देश्य के निर्धारण के बिना गति को प्रगति भी नहीं कहा जा सकता।

प्रगति या विकास के लिए मात्र उद्देश्य का निर्धारण ही पर्याप्त नहीं। लक्ष्य के ज्ञान या लक्ष्य की पहचान बिना भी गति दुर्गति बन जाती है। जड़ पदार्थ को कौन बताये कि उसका लक्ष्य किस दिशा में है। दिल्ली से मुम्बई जाने वाली गाड़ी पर भले ही लिख दिया जाए दिल्ली-मुम्बई। किन्तु बिना किसी चेतन चालक के गाड़ी अपने आप मुम्बई पहुंचने वाली नहीं है। रॉकेट स्वयं जड़ होने के कारण न चन्द्रमा को पहचानता है, न शुक्र को और न ही मंगल को। बिना यात्री के यंत्र ठीक गति, अनुकूल गति, लक्ष्य की ओर गति या प्रगति नहीं कर सकता। अतः उद्देश्य की पहचान के लिए जड़ को परिचालित करने वाली चेतन सत्ता की आवश्यकता पड़ती है अथवा जड़ तत्त्वों (अपरा प्रकृति) के पीछे छिपी हुई परा प्रकृति को मानना पड़ता है।

प्रगति या विकास के लिए मात्र उद्देश्य निश्चित होना और उद्देश्य की पहचान ही पर्याप्त नहीं है। उसके लिए उद्देश्य का आकर्षण भी परमावश्यक है। पीछे के

धक्के से आगे बढ़ जाने को अकस्मात् गति कह सकते हैं। किन्तु आकस्मिक गति अंधी होने के कारण एक धक्का आगे और चार धक्के पीछे भी लगा सकती है। अत: इसे प्रगति या विकास नहीं कहा जा सकता। हवा के थपेड़ों से इधर-उधर हिलने वाली घण्टाघर की सूइयों को घड़ी की प्रगति नहीं कहा जा सकता। पीछे के धक्के की अपेक्षा लक्ष्य का आकर्षण जब अपनी ओर खींचता है तभी सच्चे अर्थ में प्रगति कही जा सकती है अन्यथा नहीं। यदि कोई कहे कि मैं इसलिए B.A. की कक्षा में हूं क्योंकि मैंने I.A. पास कर लिया है तो यह कथन इतना अर्थपूर्ण नहीं है जितना यह कि मैं इसलिए B.A. की कक्षा में हूं क्योंकि मैं B.A. पास करना चाहता हूं। I.A. का धक्का खाकर B.A. में आने वाला निरुद्देश्य गति कर रहा है। क्योंकि I.A. पास करने के बाद कई लोग B.A. में प्रवेश नहीं भी लेते हैं तथा दूसरी दिशाओं में चले जाते हैं। इसकी तुलना में जो M.A. करने के उद्देश्य से, M.A. के आकर्षण से B.A. पढ़ रहा है। सोद्देश्य यात्रा ही प्रगति कहलाती है। यदि लक्ष्य भी जड़, गति करने वाला भी जड़ जैसा आधुनिक विज्ञान मानकर चलता है तब जड़ तत्त्व न लक्ष्य को पहचान सकेगा और न जड़ लक्ष्य जड़ तत्त्व को अपनी ओर आकर्षित कर सकेगा। तब प्रकृति में विकास सम्भव ही कैसे होगा? उदाहरणार्थ—विज्ञान के तत्त्वों को कार्बन, सल्फर, गंधक, लोहा, ऑक्सीजन आदि को क्या पता कि उन्हें किस दिशा में गति करनी है और उनका अन्तिम गन्तव्य या लक्ष्य क्या है? ये सारी गति तो **'अंधेनैव नीयमाना' यथाऽन्धा:** (अंधा अन्धे को अन्धेरे में रास्ता दिखाने चला) के समान दुर्गति बन जाएगी।

प्रगति या विकास के लिए विकास का मानक या standard पहले से सामने रहना आवश्यक है। ज्यों-ज्यों कोई वस्तु अपने मानक के निकट पहुंचती जाती है त्यों-त्यों उसमें सुधार या विकास माना जाता है। एक स्वस्थ शरीर का मानक निश्चित होने से रोगी के धीरे-धीरे उस ओर गति करने को प्रगति कहा जाएगा। इसके विपरीत गति अवगति कहलाती है। कोई कलाकार मूर्ति बनाना चाहता है तो सामने Model रखता है। भवन निर्माण के लिए मानचित्र रखकर प्रगति की जा सकती है। घड़ी को ठीक करने के लिए भी मानक घड़ी चाहिए। जिससे मिलान कर घड़ी के समय का मिलान किया जाए और यंत्र भी ठीक किया जाए। एक सूर्योदय से दूसरे सूर्योदय तक एक दिन का मानक माना गया। इसको 24 में विभाजित करके 24 घण्टा माना गया। इसी मानक को आधार मानकर ज्यों-ज्यों आगे बढ़ेंगे घड़ी बनाने में तो प्रगति मानी जाएगी। यदि प्रकृति के तत्त्वों में या जीवों में अपने आप प्रगति हो रही है, विकास हो रहा हो तो उसका मानक क्या है? यह विकास या प्रगति का क्रम यदि तब तक चलने वाला है जब तक सृष्टि है तब तत्त्वों का सबसे बड़ा मानक परम तत्त्व ही हो सकता है और जीवों का परम

मानक परब्रह्म ही हो सकता है। यह मानक पहले से है और सदा रहने वाला है। तभी प्रकृति में प्रगति सम्भव है। अन्यथा कभी नहीं। डार्विन किसी परम मानक को मानता ही नहीं। गति करने वाले तत्त्व, वस्तु या जीव में किसी चेतन प्रेरणा, लक्ष्य की ओर आकर्षण होना मानता ही नहीं। फिर भी कहता है प्रकृति में विकास हो रहा है। फ्रांस के महान् दार्शनिक हेनरी बर्गसां जो गीता भक्त एवं भारतीय दर्शन का प्रशंसक था पूछता है कि बिना मानक के पूर्वनिश्चित हुए प्रगति कैसे हो रही है और किस दिशा में हो रही है? वास्तव में जड़ वस्तु अपने आप बिना चेतन की प्रेरणा के चेतन मानक के आकर्षण के, चेतन मानक के पूर्वनिर्धारण के प्रगति कर ही नहीं सकती।

अत: विकासवाद अशुद्ध एवं तर्कहीन सिद्धान्त है। विकास जड़ द्वारा जड़ में जड़ की ओर नहीं हो सकता। जड़ जीवन की ओर, जीवन नैतिक उद्देश्य की ओर, नैतिकता आध्यात्मिकता की ओर आगे गति करते जाएं तो प्रगति कहा जा सकता है। इसलिए विश्व की अन्तिम सत्ता बर्गसां के शब्दों में Elan vital (शाश्वत जीवनधारा) है। भारतीय दर्शन के शब्दों में शाश्वत, अमर, नित्य चेतन आत्मा है।

प्रकृति का स्वरूप तथा तत्त्वों का प्रकृति से सम्बन्ध—प्रकृति का अर्थ है प्रथम कृति अथवा आगे की कृति। इसे यूरोपीय भाषाओं में Nature कहा जाता है। सामान्य रूप में लोग प्रकृति का यही अर्थ मानते हैं। जो कुछ दृश्यमान जगत् में है या हो रहा है वह सब प्रकृति है। चन्द्र, सूर्य, तारागण, हवा, पानी, पर्वत, नदी आदि सब प्रकृति के अन्तर्गत गिने जाते हैं। किन्तु प्रकृति के दो अर्थ हैं—बाह्य प्रकृति दृश्यमान जगत् के रूप में दिखाई देती है। कुछ ऐसी वस्तुएं भी हैं जो भौतिक होते हुए भी सहज इन्द्रियगोचर नहीं है। जैसे—वायु, आकाश, अणु, परमाणु आदि। वे इन्द्रियगोचर न होकर सूक्ष्मयंत्र गोचर हैं। कई बार सूक्ष्मयंत्रों की प्रत्यक्ष पकड़ में न आने वाली वस्तुओं के प्रभावों को यंत्रों द्वारा जानकर उनके अस्तित्व के विषय में गणना, कलना, आकलन या अनुमान लगाया जाता है। वास्तव में सब यंत्र इन्द्रियों की सहायता के लिए बनाये गए हैं। इसलिए जहां तक इन्द्रियों या यंत्रों की पहुंच है वहां तक सब माया का कारोबार है।

'गो गोचर जंहलग जगमाही, माया कृत परमारथ नाही।।'

प्रकृति का दूसरा अर्थ अन्त:प्रकृति है। किसी से पूछने पर कि प्रकृति कैसी है वह बाहर की गर्मी, सर्दी, वर्षा, सौन्दर्य, शांत दृश्य का वर्णन करने लगता है। हम उसे कहते हैं—नहीं, ये तो प्रकृति बाहर की है, आपकी अपनी प्रकृति कैसी है? यह सम्भव है कि बाह्य प्रकृति में शीतलता होने पर भी व्यक्ति की अन्त:प्रकृति में जलन, कुढ़न या अशांति हो और बाहर जलती हुई लू में भी उसका मन शांत हो। इसलिए अन्त:प्रकृति बाह्य प्रकृति की अपेक्षा अधिक सूक्ष्म एवं अधिक महत्त्वपूर्ण

है। अंग्रेजी भाषा में भी व्यक्ति की Inner Nature जगत् की Outer Nature की अपेक्षा अधिक महत्त्व की मानी जाती है। ब्रह्माण्ड की प्रकृति की अपेक्षा पिण्ड अधिक आधारभूत है। किसी भी कृति के बाहर के जगत् में प्रकृति के रूप में प्रकट होने से पहले वह उसके अन्तर में, उसके मन में, कल्पना में, बुद्धि में, संकल्प में प्रथम कृति के रूप में प्रकट होती है। इस अन्त:प्रकृति को अन्दर की इन्द्रियों (अन्त:करण चतुष्टय) मन-बुद्धि-चित्त-अहंकार द्वारा जाना जाता है। इस प्रकार पिण्ड और ब्रह्माण्ड में जो कुछ घट रहा है वह अन्तर इन्द्रियों द्वारा या बाहर की इन्द्रियों द्वारा या सूक्ष्मयंत्रों द्वारा जानने योग्य है। पश्चिम के विचारकों ने मन और मन के संकल्प-विकल्प, विकार, विचार आदि को अभौतिक कहकर जड़ पदार्थ से भिन्न बताया है। किन्तु भारतीय दर्शन ने मन और मन के समस्त क्रियाकलाप को अन्त:प्रकृति का अंग होने के कारण अन्दर की इन्द्रियों द्वारा जानने योग्य होने से भौतिक ही माना। पश्चिम के बड़े-बड़े दार्शनिक भी सृष्टि को Mind and Matter में विभाजित कर संतोष मान लेते हैं। किन्तु भारतीय दर्शन मन से परे किसी इन्द्रियातीत अमर तत्त्व को खोजता है।

पश्चिम के विज्ञान ने प्रकृति को एक रहस्यमय जादू की छड़ी बना रखा है। किसी भी सिद्धान्त का अन्तिम कारण या अन्तिम तार्किक व्याख्या न कर सकने पर वे प्रकृति के जादू भरे शब्द से समस्त तर्क को शांत करने की चेष्टा करते हैं। प्रत्येक जीव मरता है यह विज्ञान मानता है। वह किस प्रकार मरता है इसकी भी खोज करता है। कौन से रोग मारक हैं, किन औषधियों से रोग का निवारण हो सकता है। किन्तु विज्ञान न यह जानता है न जानने की चेष्टा करता है कि प्रत्येक जीव मरता ही क्यों है? उसका लगा-बंधा उत्तर है यह प्रकृति का नियम है। जब किसी तथ्य की व्याख्या नहीं हो सकती है तब विज्ञान प्रकृति का रहस्यमय नाम लेकर अध्याय को बंद कर देता है। पश्चिमी विज्ञान ने जिन तत्त्वों की खोज की है वे तत्त्व संख्या में उतने ही हैं या उससे अधिक हैं इस विषय में विज्ञान निश्चयपूर्वक कुछ नहीं कह सकता। भिन्न-भिन्न तत्त्वों में जो गुण या विशेषताएं हैं, वे क्यों हैं? इसके उत्तर में भी विज्ञान प्रकृति का रहस्यमय शब्द बोलकर चुप हो जाता है। ऑक्सीजन गैस जीवों के श्वसन के लिए क्यों उपयोगी है, वह वस्तुओं के जलने में क्यों सहायक है तथा नाइट्रोजन का गुण इसके विपरीत क्यों है? इस विषय में विज्ञान कोई समाधानकारक उत्तर न देकर प्रकृति का रहस्यमय पर्दा गिरा कर कहता है कि ऑक्सीजन तथा नाइट्रोजन की प्रकृति ही ऐसी है। विज्ञान प्रकृति में एकरूपता के सिद्धान्त को मानता है। जैसे जल सदा नीचे की ओर बहता है, वायु सदा सुखाता है, अग्नि सदा तप्त है, अग्नि की ज्वाला ऊपर उठती है, अम्ल Acid सदा नीले लिटमस को लाल कर देता है।

इस प्रकार प्रकृति में एकरूपता है। किन्तु यह एकरूपता क्यों है, किसके शासन से सब वस्तुएं और तत्त्व अपने-अपने नियम में बंधे हुए चल रहे हैं इसके विषय में विज्ञान मौन है। सारे ब्रह्माण्ड में सारी प्रकृति को कुछ नियमों में बांध कर रखने वाला कोई नियामक है या अन्ध प्रकृति अपने अंधे नियमों से बंधी हुई अंध गति से चल रही है। इस विषय में विज्ञान के पास कोई समाधान नहीं है। यदि प्रकृति प्रथम कृति है तो यह किसी कर्ता की कृति होनी चाहिए, यह कर्ता कौन है? यदि अंत:प्रकृति वह सूक्ष्म बीज है जो अदृश्य रहता है किन्तु वही बाह्य जगत् में बाह्य प्रकृति के रूप में प्रकट होता है तब विज्ञान द्वारा जिस बाह्य प्रकृति का अध्ययन किया जाता है उसके पीछे की बीजरूपा अन्त:प्रकृति कहां है? और विज्ञान उसके प्रति क्यों नैन मूंदे हुए है? प्रत्येक युद्ध पहले मानव के मन में प्रारम्भ होता है वह उसका सूक्ष्म रूप है, बाहर के समरांगण में होने वाला युद्ध तो अन्तर के क्रोध एवं कलह का प्रकट रूप है। विज्ञान के सभी आविष्कार पहले वैज्ञानिकों के अन्तर में स्फुरित हुए। बाद में वे जड़ जगत् में भौतिक वस्तुओं के रूप में प्रकट हुए। आइंस्टीन का सापेक्षतावाद का सिद्धान्त पहले उसके अन्तर में अन्तर्ज्ञान के रूप में संस्फुरित हुआ तथा बाद में उसे वाणी एवं भाषा प्रदान की गई। डॉल्टन की Atomic theory पहले डॉल्टन के मन में अंकुरित हुई बाद में उसे विज्ञान जगत् ने जाना। जैसे बिना वैज्ञानिक के विज्ञान का अस्तित्व ही प्रकट न होता, उसी प्रकार बिना अन्त:प्रकृति के बाह्य प्रकृति का खेल तथा उसमें विज्ञान प्रतिपादित तत्त्वों का नियमबद्ध चलन सम्भव ही नहीं हो सकता। यदि बिना अन्त:प्रकृति के बाह्य प्रकृति का खेल सम्भव ही नहीं है तो प्रश्न उठता है सारे ब्रह्माण्ड में सभी वस्तुओं का नियमन करने वाली बाह्य प्रकृति के पीछे की अन्त:प्रकृति किसके अन्त: की प्रकृति है या उसे यदि विश्व ब्रह्माण्ड का नियमन करना है तो वह अन्त:प्रकृति किसी विश्वव्यापी अन्तर्चेतना की प्रकृति होनी चाहिए। वह विश्वव्यापी चेतना Universal Mind वैश्वानर या विश्वात्मा ही परम पुरुष है जिसकी अन्त:प्रकृति में सृष्टि लीला हेतु संकल्प उठता है। **'एकोऽहं बहु स्याम्'** अर्थात् मैं एक हूं अनेक हो जाऊं। सर्जना की यह संकल्प शक्ति ही मूल प्रकृति है। अन्त:प्रकृति है। यह प्रथम कृति है और ब्रह्माण्ड में उसका तत्त्वों में खेल या जड़ जगत् में उसकी लीला आगे की कृति है।

आधुनिक विज्ञान की नयी खोजों के परिप्रेक्ष्य में चिन्तन—अल्बर्ट आइंस्टीन ने अपने सापेक्षता के सिद्धान्त द्वारा विज्ञान जगत् में एक अभूतपूर्व हड़कम्प मचा दिया। उस मेधावी एवं अलौकिक प्रतिभासम्पन्न वैज्ञानिक ने मात्र 16 वर्ष की अवस्था में यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण घोषणा की कि विज्ञान ने अभी तक जो कुछ खोजा है वह सापेक्ष ज्ञान ही है। निरपेक्ष सत्य का ज्ञान नहीं। सापेक्ष

का भाव यह है कि वह तथ्य या तथ्यों पर आधारित सिद्धान्त किसी दूसरे तथ्य या सिद्धान्त की अपेक्षा करता है। यदि अपेक्षित तथ्य या सिद्धान्त अशुद्ध या त्रुटिपूर्ण निकलता है तो उस पर आधारित सिद्धान्त भी त्रुटिपूर्ण होगा। विज्ञान ने आज तक जो कुछ खोजा है वह किसी तथ्य या सिद्धान्त को ठीक मानकर उस पर आधारित है। यदि आधार स्वयं अशुद्ध है तो आधेय अपने आप अशुद्ध हो जाएगा। विज्ञान में तो आधार आधेय का, सापेक्ष-सापेक्षित का अन्तहीन तारतम्य चल रहा है। इसलिए विज्ञान उस मूल आधार को नहीं जान सकता जो स्वयं सत्तावान है और किसी अन्य पर आधारित नहीं है, किसी अन्य की अपेक्षा नहीं रखता। निरपेक्ष स्वयं सत्य है।

सामान्य व्यवहार में पति एवं पत्नी का सापेक्ष सम्बन्ध है। बिना एक के दूसरे की कल्पना नहीं की जा सकती। यदि कोई कहे कि अमुक व्यक्ति पति है तो प्रश्न उठेगा किसका पति और इसी प्रकार किसी महिला का परिचय देते हुए कहा जाए कि यह पत्नी है तो परिचय अधूरा है। पति शब्द पत्नी की, पत्नी शब्द पति की अपेक्षा रखता है। एक मूर्ख व्यक्ति को किसी ने कहा तुम्हारी पत्नी विधवा हो गई है। वह रोने लगा। लोगों के बहुत समझाने पर भी कि तेरे जीते-जी तुम्हारी पत्नी विधवा कैसे हो सकती है। वह मूर्खतावश बोला, मेरे जिन्दा रहते मेरी माता विधवा हो सकती है, बहन विधवा हो सकती है, भाभी विधवा हो सकती है तो पत्नी क्यों नहीं? इसी प्रकार पिता-पुत्र, गुरु-शिष्य, राजा-प्रजा सभी सापेक्ष सम्बन्ध हैं। वे अन्योन्याश्रित हैं। इसी प्रकार लम्बाई-चौड़ाई-मोटाई (जो भौतिक वस्तुओं के परिमाण हैं) सभी सापेक्ष हैं। विज्ञान आज तक निरपेक्ष लम्बाई नहीं खोज सका। इसी प्रकार निरपेक्ष मोटाई, ऊंचाई आदि विज्ञान की पकड़ के बाहर हैं। स्वामी रामतीर्थ ने कक्षा में एक रेखा क ख खींची और छात्रों से कहा इस रेखा को बिना मिटाये छोटा कर दो। इस पर सभी विद्यार्थी असमंजस में पड़ गये। स्वामीजी ने रेखा अ ब पहली रेखा से लम्बी बना दी, उससे रेखा क ख अपने आप छोटी हो गई। अतः छोटापन, बड़ापन के सापेक्ष है। इसलिए विज्ञान का सारा मापन सापेक्ष है। हलकापन, भारीपन के सापेक्ष है इसलिए विज्ञान का सारा तोलन सापेक्ष है। धरती पर जिस व्यक्ति का भार दो-ढाई मन होगा वह चन्द्रमा पर भारविहीन होकर आकाश में तैरने लगेगा। इसलिए विज्ञान के Law of gravitation (न्यूटन) specific gravity (आर्कीमिडिज) सभी सापेक्ष रह जाते हैं। इनमें से कोई ऐसा सिद्धान्त नहीं है जो सारे विश्व की सब परिस्थितियों में, सब ग्रहों में, सब देश में और सब काल में सत्य सिद्ध हो सके।

आइंस्टीन ने सिद्ध किया कि गति और स्थिरता तथा न्यूटन के गति सिद्धान्त सभी सापेक्ष हैं। आइंस्टीन उदाहरण देता है कि वह लंदन में एक ट्रेन कार पर यात्रा कर रहा है। ट्रेन में एक होटल का बेयरा हाथ में चाय का ट्रे लेकर घूम रहा है। आइंस्टीन

सोचता है कि वह स्वयं स्थिर है और बेयरा गतिमान है। तनिक विचार करने पर वह अपनी मूर्खता पर हंसता है। क्योंकि पचास मील प्रति घंटे की गति से दौड़ने वाली ट्राम कार में बैठे वह दोनों गतिमान हैं। बेयरे की अपेक्षा आइंस्टीन स्थिर प्रतीत होता है और आइंस्टीन की अपेक्षा बेयरा गतिमान प्रतीत होता है किन्तु ट्रेन की अपेक्षा से दोनों गतिमान हैं और ये गति बेयरा के चलने से भिन्न गति है। लंदन शहर में आकर ट्रेन रुकती है और दूसरी ट्रेन चलने लगती है, आइंस्टीन सोचता है हमारी गाड़ी खड़ी है और दूसरी गाड़ी चल रही है। वह पुनः अपनी मूर्खता पर हंसता है। क्योंकि समूचा लंदन शहर धरती के साथ एक हजार मील प्रति घंटे की गति से घूम रहा है। धरती स्वयं धरती की अपेक्षा स्थिर नजर आती है इसलिए धरती का एक नाम स्थिरा है। पर सूर्य की अपेक्षा से धरती दो गतियां कर रही हैं—एक अपने अक्ष पर चौबीस घंटे की परिक्रमा और दूसरी सूर्य के चारों ओर 365 दिन 5 घण्टे 48 मिनट 45.97 सेकण्ड में वार्षिक गति। इस गतिशीलता के कारण धरती का एक नाम गो है। इसी प्रकार सूर्य भी अन्य तारों या महासूर्यों की अपेक्षा से गतिमान है। गति और स्थिरता सभी सापेक्ष ही हैं। सारा ब्रह्माण्ड ही गतिमान है। किन्तु उस गति की जांच और मापन असम्भव ही है। जब सब कुछ गतिमान हो। मापने वाला स्वयं भी एक छोटे से धूलिकण के समान ब्रह्माण्ड के साथ घूम रहा हो तो गति को कौन जांचे और कैसे मापे? इसलिए निरपेक्ष गति को न मानव जान सकता है और न मानव द्वारा आविष्कृत विज्ञान। आइंस्टीन का मत है कि निरपेक्ष गति और स्थिरता दोनों एक ही हैं। निरपेक्ष दूरी और निरपेक्ष निकटता दोनों एक है। निरपेक्ष सूक्ष्मता और निरपेक्ष विराट्रूपता दोनों एक है। पूर्ण में जाकर सभी विपरीत गुण एक हो जाते हैं। जहां तक द्वन्द्व है, द्वैत है, वहां तक बाह्य जगत् है और वहीं तक विज्ञान की कुछ मात्रा में पहुंच सम्भव है। किन्तु जहां द्वैत, द्वन्द्व बचता ही नहीं, उस पूर्ण या अनन्त को विज्ञान नहीं जान सकता। उसके लिए हमें भारतीय ऋषियों की शरण में जाना पड़ेगा। जिन्होंने विज्ञान के भौतिक जगत् से परे विज्ञान के भौतिक मापन, तोलन के यंत्रों को छोड़कर विज्ञान के सापेक्ष तथ्यों एवं सिद्धान्तों का दुराग्रह छोड़कर अपनी अन्तर्चेतना से निरपेक्ष पूर्ण तत्त्व का साक्षात्कार किया। यजुर्वेद के ईशावास्योपनिषद् में गाया है—

अनेजदेकं मनसो जवीयो नैनद्देवा आप्नुवन् पूर्वमर्षत्।
तद्धावतोऽन्यानत्येति तिष्ठत्तस्मिन्नपो मातरिश्वा दधाति।।

अर्थात् वे परमेश्वर अचल एवं (और) मन से अधिक तीव्र गति युक्त हैं, सबके आदि ज्ञानस्वरूप तथा सबको जानने वाले हैं। इन परमेश्वर को; इन्द्रादि देवता भी नहीं पा सके या जान सके हैं, वे (परब्रह्म पुरुषोत्तम) दूसरे दौड़ने वालों को (स्वयं) स्थिर रहते हुए ही अतिक्रमण कर जाते हैं; उनके होने पर ही और

उन्हीं की सत्ता शक्ति से वायु आदि देवता, जलवर्षा आदि क्रिया सम्पादन करने में समर्थ होते हैं।

तदेजति तन्नैजति तद्दूरे तद्वन्तिके।
तदन्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्यास्य बाह्यतः।।

अर्थात् वे चलते हैं, वे नहीं भी चलते। वे दूर से भी दूर हैं। वे अत्यन्त समीप हैं। वे इस समस्त जगत् के बाहर भी हैं।

अणोरणीयान्महतो महीयानात्मास्य जन्तोर्निहितो गुहायाम्।
तमक्रतुः पश्यति वीतशोको धातुप्रसादान्महिमानमात्मनः।।

कठोपनिषद्—2-20

अर्थात् आत्मा सूक्ष्म से भी सूक्ष्म, बड़े से भी बड़ा है। प्राणी के हृदय में वह स्थित है। निष्काम पुरुष विधाता के प्रसाद से आत्मा की महिमा से शोक रहित होकर देखता है।

देश-काल का बंधन—विज्ञान ने जो कुछ खोजा है वह देश काल परिच्छिन्न है। संसार में जो कुछ है वह देश-काल से ढका हुआ और बंधा हुआ है। क्या कोई ऐसी वस्तु या ऐसा तत्त्व भी है जो देश-काल के बंधन से मुक्त है। तर्क प्रमाणित करता है कि बंधन का ज्ञान ही सिद्ध करता है कि बंधन से मुक्त अवस्था अवश्य है। यदि सर्वत्र बंधन ही बंधन है और सब कुछ एवं सब कोई बंधन में ही हो तो बंधन का परिज्ञान ही असम्भव हो जाएगा। जब पग-पग पर हमें देश-काल का बंधन अखरता है तो निश्चय ही हमारे भीतर की कोई सत्ता देश-काल के बंधन को तोड़कर मुक्त होने के लिए तड़पती है। कोई प्राणी जब अपने वश में होता है तो उसे मुक्त माना जाता है और परवशता का दुःख भोगने वाले को बद्ध, पराधीन माना जाता है। भगवान् मनु ने कहा है—

सर्वं परवशं दुःखं सर्वं आत्मवशं सुखम्।।

परवशता ही दुःख है, आत्मवशता ही सुख है। हम प्रतिदिन अनुभव करते हैं कि देश (स्थान) Space हमारे शारीरिक व्यक्तित्व को सीमित एवं बद्ध कर देता है। हम शरीरधारी रूप में एक ही समय में यत्र-तत्र सर्वत्र नहीं हो सकते। यदि हम कुर्सी पर हैं तो चौकी पर नहीं, चौकी पर हैं तो आसन पर नहीं, आसन पर हैं तो गाड़ी में नहीं, गाड़ी में हैं तो कार्यालय में नहीं, भारत में हैं तो अमेरीका में नहीं, धरती पर हैं तो चन्द्र पर नहीं हैं। इस प्रकार देश हमारे शरीर को सीमाबद्ध कर देता है। जो सीमा बड़ी अप्रिय और अखरने वाली प्रतीत होती है। विशेष रूप से तब जब मनुष्य को एक ही समय में दो दूरस्थ स्थानों पर समान रूप से महत्त्वपूर्ण प्रेम की पुकार या कर्तव्य की पुकार आ जाए तब उसे देश का बंधन सबसे अधिक

दु:खदायी एवं गला घोंटने वाला लगता है। उसके अन्तर की प्रेरणा यही होती है कि काश! दोनों स्थानों पर उड़कर पहुंच पाता। इससे सिद्ध होता है कि मानव की अन्तरात्मा देश के बंधन से समझौता करने को तैयार नहीं है। देश की दीवार तोड़कर सर्वव्यापक होना चाहती है।

इसी प्रकार मानव की अन्तरात्मा काल के बंधन को भी स्वीकार करने को तैयार नहीं है। जहां देश हमारे शारीरिक व्यक्तित्व को सीमित करता है वहां काल हमारे शारीरिक व्यक्तित्व को खा जाता है। एक काल था जब हम शरीरधारी रूप में नहीं थे। एक काल है जब हम शरीरधारी रूप में हैं। एक काल पुनः होगा जब हम शरीरधारी रूप में नहीं रहेंगे। मृत्यु सभी प्राणियों के लिए निश्चित गति होते हुए भी कोई प्राणी मरना नहीं चाहता। सबके अन्तर्मन की यही कामना है कि हम सदा जीवित रहें अर्थात् हम अमर हो जाएं। मनुष्य देश की दीवारों को तोड़कर तथा काल के दांतों को तोड़कर सर्वव्यापी एवं सार्वकालिक होना चाहता है। मानव के अन्दर की यह कामना ही मोक्ष की इच्छा है।

दिक्-काल एकत्व—जहां अन्य दार्शनिक देश और काल को दो वस्तुएं (पद, term) मानते आए हैं। वहां आइंस्टीन जैसे क्रान्तदर्शी विचारक ने कहा कि देश और काल दो सत्ताएं नहीं है। देश काल मिलकर एक ही सत्ता है। अत: Space and time न कहकर वह space time continun देश-काल अविच्छिन्न धारा कहता है। उसके मत में देश और काल में तत्त्वत: कोई अन्तर नहीं। न्यूटन दिक् एवं काल को निरपेक्ष मानता था। आइंस्टीन से पूर्व मिनकावस्की ने भी दिक्-काल को एक माना था। आइंस्टीन ने इससे बड़ा लाभ उठाया। देश काल में परिवर्तित हो जाता है और काल देश में। देश दो बिन्दुओं के बीच का सम्बन्ध है। जैसे क और ख के बीच छह इंच अन्तर है तो उसे कहा जाएगा छह इंच स्थान (देश) है। इसी प्रकार काल भी दो बिन्दुओं के बीच का सम्बन्ध है। जैसे एक सूर्योदय से अगले सूर्योदय तक एक दिन, सूर्योदय से सूर्यास्त तक आधा दिन, सूर्योदय से मध्याह्न तक एक-चौथाई दिन, 12 बजे से 6 बजे तक दो बिन्दुओं का अन्तर 6 घंटे। इस प्रकार देश और काल दोनों ही बिन्दुओं के बीच के सम्बन्ध हैं। यदि देश ही न हो तो काल की कल्पना भी नहीं की जा सकती। यदि न सूर्य हो, न धरती, न नवग्रह, न धरती की परिक्रमा, न सूर्योदय, न सूर्यास्त, न काल, न काल विभाजन तब वेद के नासदीय सूक्त के समान सृष्टि शून्य होगी। किन्तु ब्रह्म की सत्ता तब भी अक्षुण्ण रहेगी। आइंस्टीन का मत है कि विज्ञान ने जो कुछ खोजा है और जो कुछ खोज सकता है वह देश-काल से सीमित एवं सापेक्ष ही है। देश-कालातीत सत्य को विज्ञान नहीं जान सकता।

4. आयाम देश काल 1. लम्बाई 2. चौड़ाई 3. मोटाई 4. काल—आइंस्टीन ने भौतिक वस्तुओं के चार परिमाण माने हैं देश के तीन आयाम हैं—(क) लम्बाई (ख) चौड़ाई (ग) मोटाई और (काल का एक आयाम है)—काल।

हर व्यक्ति की एक लम्बाई, चौड़ाई और मोटाई है और एक विशेष काल में अस्तित्व रखता है। आइंस्टीन ने सब वैज्ञानिकों को विस्मित करते हुए सिद्ध किया कि देश-काल एक ही सिक्के के दो पहलू हैं और एक में परिवर्तन से दूसरे में स्वत: परिवर्तन हो जाता है। धरती पर रहने वाले मानवों को एक सूर्योदय से दूसरे सूर्योदय तक एक दिन मानकर कालगणना करनी पड़ती है, किन्तु तीव्र गति के रॉकेट में बैठकर 24 घंटे में धरती की 17 परिक्रमा करने वाले व्यक्ति को 17 सूर्योदय, 17 सूर्यास्त के दर्शन होंगे। इस प्रकार देश पर विजय पाने पर काल पर विजय पाई जाती है। भारत से अमेरीका जाने वाले विमान में 24 घंटे की यात्रा में एक भी रात्रि नहीं आती तथा अमेरीका से भारत आने वाले विमान में 24 घंटे में दो-दो बार रात्रि आ जाती है। इस प्रकार देश के बदल से काल बदल जाता है। आइंस्टीन के सिद्धान्तानुसार यदि हम super Lux (प्रकाश से अधिक गति वाला रॉकेट) बना लें और उससे किसी तारे पर चले जाएं तो हम धरती के हजारों वर्ष के इतिहास को पुन: देखेंगे। भगवान् कृष्ण के गीतोपदेश को और शिवाजी का राज्यतिलक फिर देख सकेंगे। (यदि कोई वस्तु बहुत तेज चलती है तो उसके सन्दर्भ में घड़ी धीरे-धीरे चलने लगती है और मापदण्ड सिकुड़ जाता है।)

आइंस्टीन ने वैज्ञानिकों की नाप-तौल की प्रणालियों को झटका देते हुए कहा है कि गति के बढ़ने के साथ भार में अन्तर पड़ जाता है। प्रारम्भ में किसी वस्तु के वेग के साथ उसकी शक्ति बढ़ जाती है। किन्तु बहुत तीव्र हो जाने पर उसका भार कम होने लगता है। धीरे-धीरे वह भारहीनता की ओर बढ़ने लगता है। पदार्थ की परिभाषा की गई थी—जो चीजें जगह घेरती, वजन रखती हैं उन्हें पदार्थ कहते हैं। आइंस्टीन ने सिद्ध किया कि जगह (देश) भी सापेक्ष है। काल के परिवर्तन के साथ देश भी बदल जाता है और भार भी सापेक्ष एवं परिवर्तनशील है। इसलिए पदार्थ की परिभाषा के बाट-माप ही सापेक्ष परिवर्तनशील एवं अविश्वसनीय निकलते हैं। आधुनिक विज्ञान ने जो तत्त्वों की खोज की है, उनका Atomic weight (आणविक भार) भी निश्चित किया है जैसे Hydrogen गैस का आणविक भार 1 माना गया है। जब भार ही सापेक्ष है तो देश-काल में गति के परिवर्तन के साथ तत्त्वों का आणविक भार भी परिवर्तित होता रहेगा। तब विज्ञान की गणना कैसे विश्वसनीय मानी जाएगी।

आइंस्टीन ने यह भी रहस्योद्घाटन किया कि गणित एवं ज्यामिति का सारा ज्ञान-विज्ञान भी सीमित एवं सापेक्ष है। किसी वस्तु का सीधापन मापने के लिए उसे धरती के समानान्तर रखकर जांचा जाता है। यदि मापदण्ड (scale) के सब

बिन्दु धरती के सब बिन्दुओं को स्पर्श करें तो उसे समरेखा मान लिया जाता है। किन्तु जब धरती स्वयं गोलाकार है तब धरती के समानान्तर रेखा कुछ न कुछ मात्रा में गोलाई अवश्य लिये होगी। अत: सरल रेखा सापेक्ष रूप से सरल कही जा सकती है। पूर्ण निरपेक्ष सरलता दुर्लभ है। लोवट चेमस्की बोलाई, गौस, रीमेन ने यूक्लिड की ज्यामिति को अशुद्ध मानकर नई ज्यामिति की रचना की। क्योंकि यूक्लिड की ज्यामिति सरल रेखाओं पर आधारित है और धरती के गोले पर कोई सरल रेखा ही नहीं बनाई जा सकती। आइंस्टीन ने भी यही मत माना। सरल रेखा की परिभाषा की जाती है दो बिन्दुओं के भीतर का सबसे छोटा अन्तर। किन्तु बिन्दु की परिभाषा में बताते हैं कि जब दो रेखायें एक-दूसरे को काटती हैं तब बिन्दु का निर्माण होता है। इस प्रकार रेखा की परिभाषा बिन्दु पर अवलम्बित है और बिन्दु की परिभाषा रेखा पर। यह चक्राकार, अन्योन्याश्रयी सापेक्षतावाद है। जैसे दो व्यक्तियों का पता-ठिकाना पूछा जाए—क कहे ख के मकान के सामने रहता हूं और ख कहे मैं क के घर के सामने रहता हूं और पुन: पूछने पर कि दोनों कहां रहते हैं? तो उत्तर मिले—आमने-सामने रहते हैं। तो इससे हमें कुछ भी पता-ठिकाना ज्ञात नहीं हो सकेगा। सरल रेखा की परिभाषा की जाती है। उसमें केवल लम्बाई है। न मोटाई है न चौड़ाई। ऐसी शुद्ध रेखा कल्पना मात्र ही रहेगी। क्योंकि पतली से पतली रेखा की कुछ मोटाई तो अवश्य होगी। यदि पुस्तक के पतले पृष्ठ की धार को सबसे पतली रेखा मानकर उसकी मोटाई को लगभग शून्य मान लिया जाए तो एक हजार पृष्ठों की मोटाई भी शून्य होनी चाहिए और संसार भर की पुस्तकों का कोई फैलाव होना ही नहीं चाहिए। यदि ब्लेड की पतली धार को लगभग शून्य मोटाई का मान लिया जाए तो ब्लेडों के पार्सल पैकेट गोदामों के स्थान के लिए कोई आवश्यकता ही नहीं पड़ेगी। इसी प्रकार शुद्ध निरपेक्ष रेखा केवल कल्पना ही है। इसी प्रकार बिन्दु की परिभाषा की जाती है कि उसमें लम्बाई, चौड़ाई, मोटाई कुछ भी नहीं है। ऐसा शुद्ध बिन्दु भी केवल कल्पना मात्र रहेगा। क्योंकि पतली से पतली कलम, पिन और कांटे से भी बनाया गया तो कम से कम कलम या कांटे की नोक के बराबर मोटा अवश्य है। अत: ज्यामिति में सापेक्ष और कल्पित बिन्दुओं से रेखाओं, त्रिकोण, चतुष्कोण आदि आकारों से काम चलाया जाता है। शुद्ध बिन्दु, रेखा आकार गणित के विज्ञान की पहुंच के बाहर है।

गणित सापेक्ष—गणित की जितनी संख्यायें हैं वे अपूर्ण एवं काम चलाऊ हैं। पूर्ण वह है जिसमें न कुछ बढ़ाने की और न घटाने की सम्भावना हो। गणित में जमा, बाकी, गुणन और भाग का व्यापार चलता है। गणित में चाहे जितनी बड़ी से बड़ी संख्या लिख दें वह भी अपूर्ण है। क्योंकि उसमें एक घटाया जा सकता है या एक बढ़ाया जा सकता है। जो क्षतिग्रस्त हो सकती है वह पूर्ण नहीं

है। क्योंकि उसका पूर्णत्व-घट सकता है। जिसमें वृद्धि हो सकती है वह भी पूर्ण नहीं है। क्योंकि पूर्ण में कुछ बढ़ाया ही नहीं जा सकता। यदि कोई पात्र लबालब दूध से भरा हो तो उसमें एक भी बूंद दूध और समाने का स्थान ही नहीं बचता। यदि पूर्ण में कुछ बढ़ सकता है तो वह पहले अपूर्ण ही था। यदि पूर्ण में कुछ घट सकता है तो वह क्षति का भार सहने वाला, नष्ट हो जाने वाला है, सच्चा पूर्ण नहीं है। यदि पूर्ण को गुणित करके अनेक गुणा किया जा सकता है तब भी वह पूर्ण नहीं माना जा सकता। क्योंकि पूर्ण तो उपमान विहीन, अद्वितीय, अतुलनीय होना चाहिए। यदि गुणन द्वारा और भी पूर्ण बन सकते हैं तो उसे पूर्ण ही नहीं माना जा सकता। यदि पूर्ण का विभाजन किया जा सकता है। उसके टुकड़े करके खण्डित किया जा सकता है तो वह अखण्ड नहीं रहता। अतः पूर्ण वह है जो जोड़-घटाव से परे, गुणन व भाग से परे, एक-अखण्ड, स्वतः एवं सर्वदा परिपूर्ण सत्ता है, वह अनन्त है। Infinite है।

पूर्ण अनन्त—वह पूर्ण घटावरहित, अक्षय है।
वह पूर्ण वर्द्धनरहित परिपूर्ण है, निर्योग है।
वह पूर्ण गुणनरहित, निर्गुण है।
वह पूर्ण भागरहित, अखण्ड-अविभाज्य है।

सर्वभूतेषु येनैकं भावमव्ययमीक्षते।
अविभक्तं विभक्तेषु तज्ज्ञानं विद्धि सात्त्विकम्।। 18/20, गीता

जिस ज्ञान के द्वारा सब भूतप्राणियों में नाम-रूप में विभक्त अनेकता भरे संसार में उस एक अविभक्त, अव्यय, अविनाशी, पूर्ण तत्त्व को देखता है वही ज्ञान सात्त्विक है। सब जड़ एवं प्राणियों के जड़-चेतन वस्तुओं के नाम तथा रूप भिन्न हैं। इस कारण से सब अलग बंटे हुए दिखाई देते हैं, किन्तु सब मनुष्य अपने को मैं कहते हैं। सब प्राणियों के लिए स्वयं शब्द प्रयोग होता है इससे परे जड़ वस्तुओं के लिए भी स्वयं शब्द प्रयोग होता है। बादल स्वयं बरस पड़ा। सूर्य स्वयं तपने लगा। दीपक स्वयं बुझ गया। इस प्रकार विश्व की अनन्तानन्त जड़-चेतन वस्तुओं में जो एक मैं (स्वयं) छिपा हुआ है, वस्तुओं के अनेक वर्गों या प्राणियों में बंट जाने पर भी मैं स्वयं नहीं बंटा। इन विभक्तों में जो उस अविभक्त को देखता है, अव्यय और पूर्ण को देखता है उसका ज्ञान सर्वोपरि, श्रेष्ठ व सात्त्विक ज्ञान है। इस प्रकार गणित पूर्ण या अनन्त की गणना नहीं कर सकता। गणित विज्ञान केवल अपूर्ण की गणना करके ही तृप्त हो जाता है। गणना मनुष्य की सीमित बुद्धि ने करनी प्रारम्भ की है और पूर्ण या अनन्त मन-बुद्धि से परे है। इसलिए मनुष्य की बुद्धि उसकी गणना कर ही नहीं सकती।

(क) जो बुद्धि उसी पूर्ण से थोड़ा-सा प्रकाश प्राप्त कर संसार की अन्य अपूर्ण वस्तुओं की गणना करती है वह स्वयं अपने प्रेरक और जनक को कैसे गिन सकती है?

(ख) डॉक्टर के थर्मामीटर से हम सूर्य का ताप नहीं माप सकते। सूर्य का ताप मापने की चेष्टा में थर्मामीटर और डॉक्टर दोनों ही जल जाएंगे।

(ग) **गई पूतरी नौन की, थाह सिन्धु की लेन।**
गल बल वह सिन्धु भई, कहे कौन अब बैन।।

(घ) जो बिजली का बल्ब स्वयं विद्युत् से प्रकाशित होता है और अपने इर्द-गिर्द की छोटी-मोटी वस्तुओं को प्रकाशित करता है। उसमें यह सामर्थ्य नहीं कि वह विद्युत् को ही प्रकाशित कर सके या उसकी व्याख्या कर सके। विद्युत् अदृश्य शक्ति है, उसकी तारें, बल्ब आदि दृश्य हैं। बल्ब का प्रकाश दृश्यों को ही दर्शा सकता है। अदृश्य द्रष्टा या सृष्टा को नहीं दर्शा सकता।

(ङ) कोई व्यक्ति अपने सगे पिता को दूल्हे के रूप में बरात में सजा हुआ कभी नहीं देख सकता। जब उसका अपना अस्तित्व ही पिता के विवाह के पश्चात् हुआ तो वह पिता का विवाह कैसे देख सकता है? मनुष्य को गणना की बुद्धि जिस परम शक्ति से प्राप्त हुई है वह उसे ही गिनने का सामर्थ्य कैसे प्राप्त कर सकता है? जो कुछ गिनने में आ जाए वह सभी अपूर्ण होता है। तो पूर्ण यदि सचमुच पूर्ण है तो उसे कैसे गिना जाए?

(च) जिसमें घटने, बढ़ने, भाग व गुणन की गुंजाइश है ही नहीं। वहां गणित के सभी बाट-माप बेकार हो जाते हैं। अनन्त का गणित भी अनन्त एवं निराला है।

अनन्त (पूर्ण) + पूर्ण = पूर्ण

पूर्ण – पूर्ण = पूर्ण

पूर्ण × पूर्ण = पूर्ण

पूर्ण ÷ पूर्ण = पूर्ण

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते।।

इस प्रकार गणित विज्ञान भी सापेक्ष है। गणना केवल अनेकता में हो सकती है। गणना के लिए कम से कम दो सत्ताएं अवश्य चाहिएं। एक गणक दूसरी कलन-वस्तु (जिसे गिना जाए)। इस प्रकार द्वैत के बिना गणना हो ही नहीं सकती और गणक, गणित और गणना तीनों को गिना जाए तो त्रेत बन जाता है। जब 'परमतत्त्व' एकमेवाद्वितीयम् हो तो उसकी गणना स्वयं उसके सिवा और कौन कर

सकता है। यदि गणना सम्भव मान लें तो वह अद्वैत नहीं बचता। यदि अद्वैत सत्ता है तो गणना की सम्भावना नहीं। भारतीय दर्शन ने परम तत्त्व को एक कहने में भी संकोच किया। क्योंकि एक भी गिनती है। इसलिए उसे अद्वैत, अनन्त आदि नामों से समझाया गया। अनन्त मन-वाणी से परे है। मुनि मौन धारण करके आनन्दित होते हैं। किन्तु उस आनन्द का बखान नहीं कर सकते।

आत्म अनुभव ज्ञान की जो कोई पूछे बात।
गूंगा गुड़ खाय के कहे कौन मुख स्वाद।। (कबीर)

गुरु नानकदेवजी कहते हैं—

कथना कथी ना आवे तोटि,
कथी कथी कथी कोटि-कोटि-कोटि।

अर्थात् करोड़ों-करोड़ों जबानों से करोड़ों युगों तक उसका कथन करता रहे फिर भी कोई उसका पार नहीं पा सकता। इसलिए वेद के ऋषि भी अन्त में हार मानकर नेति-नेति कहते हैं। अर्थात् हमने जिस ब्रह्म का बखान किया है वो वाणी तक सीमित नहीं है। वाणी के बंधन में नहीं है। वाणी के कथन में आ नहीं सकता और जितना हमने वर्णन किया है उतना मात्र ही नहीं है। मुनियों ने जब अपनी आत्मानुभूति को प्रसादी वाणी द्वारा मानव कल्याण के लिए अन्य मानवों को बांटी तब वे मुनि से ऋषि बन गए। क्योंकि मानव के पास मन, वाणी, बुद्धि के अतिरिक्त और कोई भाव प्रकाशन का साधन नहीं है। इसलिए बाध्य होकर मानव को वाणी से बखान करना पड़ा। किन्तु शंकराचार्य जैसे उच्च दार्शनिकों ने परम तत्त्व के कोई विधायक गुण नहीं बखान किए। क्योंकि उससे परम तत्त्व गुणों में सीमित हो जाता है, गुणों में बंध जाता है। उन्होंने निषेधात्मक गुण बताये ताकि मनुष्य को समझ भी आ जाए, गुण और वाणी का बंधन भी न रहे। अर्थात् अजर (जो बूढ़ा नहीं होता), अमर (जो मरता नहीं, अविनाशी), अक्षय (जिसका क्षय नहीं होता), अव्यय (जिसका व्यय नहीं होता), अक्षर (जिसका क्षरण नहीं हो), अगोचर (जो इन्द्रियों से दिखाई नहीं देता), अवाङ्मनस्गोचर (मन, वाणी और इन्द्रियों से परे), अद्वैत (जो दो नहीं है), अद्वय, अद्वितीय (जिसकी तुलना का कोई है नहीं), अशेष (जिसके पीछे कुछ शेष नहीं बचता), निराकार, निर्विकार, निर्गुण, निरुपाधि (उपाधियों से परे), अविभक्तम् (जो बंटा हुआ नहीं है), निष्कलंक, अखण्ड, अच्छेद्य, अभेद्य, अदृश्य आदि। इस तरह शंकराचार्य ने ब्रह्म की निषेधात्मक गुणों से व्याख्या की। कहीं-कहीं प्रारम्भिक शिक्षा के लिए उस पूर्ण अनन्त को एक कहा गया किन्तु शीघ्र ही सुधार करके उसे अद्वैत कह दिया गया। क्योंकि एक की संख्या मनुष्य की बुद्धि द्वारा आविष्कृत गणना का अंक है। यदि ब्रह्म मनुष्य की तुच्छ बुद्धि की गिनती में आ सके तो फिर वह सीमित हो

जाएगा। यदि एक को मान लिया जाए तो एक के सब गणना परिवार को मानना पड़ेगा। 1+1 मिलकर दो बन जाएंगे। इसी प्रकार एक और जोड़ देने से तीन और सारी गिनती बनती जाएगी। इसलिए शुद्ध तर्क की भाषा में उसे एक कहना भी उचित नहीं है। भाषा की लाचारी से उसे कभी एक कह भी दिया जाए तो भी दार्शनिक शब्दावली में अद्वैत कहने में ही पूर्णत्व के भाव की कुछ रक्षा होती है।

आधुनिक विज्ञान में जिन तत्त्वों की गणना है वे सब गणना योग्य एवं गिनती के आणविक भार वाले होने के कारण गणित एवं रसायन के सीमित क्षेत्र के लिए उपयोगी हैं। परम तत्त्व या पूर्णत्व के ज्ञान के लिए कोई उपयोगी नहीं है। गणना केवल शांत की हो सकती है अनन्त की नहीं। आइंस्टीन के सापेक्षतावाद के सिद्धान्त ने वैज्ञानिकों के अहम्भाव को एक बड़ा धक्का दिया और उनको यह अनुभव होने लगा कि उनकी अब तक की सारी साधना परम सत्य, पूर्ण एवं अनन्त सत्ता की खोज के लिए नितान्त व्यर्थ हुई है। प्रकृति के बहिरंग के कुछ तथ्यों एवं सिद्धान्तों का अपूर्ण व सापेक्ष अध्ययन मात्र ही हो सका है।

न ईथर न तरंगें, केवल ऊर्जा—माइकेलसन और मोरली नामक वैज्ञानिकों ने यह सिद्ध किया कि आकाश में ईथर नाम का कोई पदार्थ नहीं है। उन्होंने प्रकाश की दो किरणों को दो भिन्न दिशाओं में भेजा। एक ईथर की अनुकूल दिशा में, दूसरी प्रतिकूल दिशा में। उन्हें यह जानकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि प्रकाश की लहरों के अनुकूल एवं प्रतिकूल दिशाओं में चलने के और एक ही दूरी तक पहुंचने में समान समय लगता है। इससे पहले न्यूटन यह मानता था कि ईथर समस्त दिशाओं में व्याप्त है। कुछ वैज्ञानिक मानते थे कि जिस प्रकार समुद्र में जलयान को चलाने पर लहरें उठती हैं उसी प्रकार आकाश में ग्रहों-उपग्रहों या अन्य वस्तुओं के चलने से ईथर में लहरें उठती हैं। अनुकूल दिशा में गति सुगम एवं तेज होती है तथा प्रतिकूल दिशा में गति कठिन और धीमी हो जाती है। माइकेलसन और मोरली ने सिद्ध किया कि ईथर नाम की कोई चीज नहीं है और आकाश में ईथर की लहरें नहीं बनती। आइंस्टीन इससे प्रभावित हुए तथा उन्होंने यह सिद्धान्त दिया कि आकाश में विद्युत् चुम्बकीय ऊर्जा Radio Active या Electro Magnetic Energy के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। आधुनिक विज्ञान जिन भौतिक तत्त्वों की गिनती करता है वे तत्त्व अन्त में अलग-अलग 105 पदार्थों के रूप में बचते ही नहीं हैं। वे अन्तिम विश्लेषण पर मात्र विद्युत् चुम्बकीय ऊर्जा ही रह जाते हैं। वहां सोना और कोयला, गंधक और पारा, हाइड्रोजन और नाइट्रोजन का कोई भेद बचता ही नहीं है। सब तत्त्वों की ऊर्जा नाम-रूप या तत्त्वभेद रहित, एक-अभेद-अविभाज्य, असंग-निर्लिप्त ऊर्जा है। यदि स्थूल तत्त्व सत्य है तो उनकी सत्ता सदा बनी रहनी चाहिए और यदि ऊर्जा ही सत्य है तो विज्ञान द्वारा खोजे गये सौ से

अधिक तत्त्व परम सत्य नहीं है। सत् वस्तु का लय, लोप या विनाश कभी नहीं हो सकता है।

आइंस्टीन ने यह भी सिद्ध किया कि जो वस्तु ऊपर से स्थिर प्रतीत होती है वह वास्तव में बड़ी तीव्र गति से गतिमान है। प्रत्येक वस्तु के सबसे सूक्ष्म कण को Atom या परमाणु कहा जाता है। उस परमाणु में एक केन्द्रीय बिन्दु है जिसे न्यूक्लियस या Proton कहा जाता है। उसके चारों ओर अनेक सूक्ष्म कण Electron बड़े वेग से परिक्रमा कर रहे हैं। अत: इस विश्व में सर्वत्र गति ही गति है। स्थिरता केवल माया या आँख का धोखा है। इस खोज से पदार्थ के स्थूल रूप और पदार्थ की परिभाषा (जगह घेरना और वजन रखना) को भी भारी आघात लगा। आइंस्टीन ने यह भी बताया कि परमाणु को Electron और proton में तोड़ा जा सकता है। बाहरी परिधि में परिक्रमा करने वाले इलेक्ट्रॉन अनेक परिधियों में बड़ी तीव्र गति से घूमते रहते हैं। जब इलेक्ट्रॉन एक परिधि से दूसरी परिधि तक छलांग लगाता है तब बहुत बड़ी ऊर्जा का विस्फोट होता है, जिससे परमाणु बम तैयार किया जा सकता है। यह ऊर्जा भौतिक पदार्थों के कोई गुण नहीं रखती। न उसमें कोई वजन है और न वह जगह घेरती है।

मैडम क्यूरी नामक महिला ने रेडियम नामक धातु को खोजा जिसमें से निरन्तर ऊर्जा निकलती रहती है। इस विद्युत् चुम्बकीय ऊर्जा को रेडियम से निकलने के कारण रेडियोधर्मी ऊर्जा (Radio Active Energy) कहा गया। ऐसे ही ऊर्जा यूरेनियम नामक धातु से भी निकलती रहती है। भौतिकी के वैज्ञानिकों ने खोजा कि यह रेडियोधर्मी ऊर्जा ही अन्तिम तत्त्व के रूप में बचती है। ऊर्जा के आविष्कार को देखकर बर्ट्रेंड रसेल ने कहा पदार्थ (Matter) की जिन ईंटों से भौतिकवाद का भवन निर्मित हुआ था अब वे ईंटें ही झूठी साबित हो गई हैं। भौतिकवाद ने घोषणा की थी कि सृष्टि का परम तत्त्व पदार्थ ही है। किन्तु विज्ञान की आधुनिक खोजों ने सिद्ध किया कि अन्तिम विश्लेषण पर पदार्थ बचता ही नहीं। केवल ऊर्जा बचती है जिसमें पदार्थ के कोई गुण ही नहीं बचते। इस तरह पदार्थवाद या भौतिकवाद का भव्य भवन भौतिक विज्ञान की आधुनिक खोजों से स्वयं ही धराशायी हो गया है।

बर्ट्रेंड रसेल ने भौतिकवाद के भवन को धराशायी करने के पश्चात् भी अपने को अध्यात्मवादी घोषित करने का साहस नहीं दिखाया। रसेल कहता है कि ऊर्जा न भौतिक गुण वाली है और न चेतन गुण वाली। वह जड़ और चेतन दोनों से परे है। उसका स्वरूप क्या है यह हम नहीं कह सकते। किन्तु उसी में से जड़ और चेतन दोनों का प्राकट्य हुआ है। ऊर्जा का स्वरूप अनिर्वचनीय है। क्योंकि बर्ट्रेंड रसेल स्वयं जीवनभर एक नास्तिक एवं इहलोक-यथार्थवादी रहा। इसलिए उस अभौतिक गुणों वाली ऊर्जा को सहसा चेतन घोषित करने का साहस उसमें नहीं हुआ। किन्तु

भौतिकवाद की पराजय की घोषणा अपने आप चेतन तत्त्व की विजय की घोषणा सिद्ध हो जाती है। जड़ और चेतन दोनों से परे किसी तीसरे तत्त्व की कल्पना केवल बौद्धिक दुस्साहस मात्र है। जो अन्य विज्ञानवेत्ताओं को मान्य नहीं है।

विज्ञान और भारतीय दर्शन के दृष्टिकोण में मौलिक भेद—

(क) पेरिस विश्वविद्यालय के प्रख्यात दार्शनिक श्री रने गेनों के मत में भारतीय दर्शन की दृष्टि सनातन एवं शाश्वत है। किन्तु पाश्चात्य दर्शन की दृष्टि मात्र आधुनिक है।

(ख) भारत में सभी विज्ञान आध्यात्मिक परम तत्त्व की प्राप्ति के लिए सहायक एवं मार्गदर्शक सीढ़ियों के रूप में रहे हैं। किन्तु, आधुनिक पाश्चात्य विज्ञान आध्यात्मिक परम तत्त्व के प्रति विद्रोह करके मानव को उससे विमुख करने हेतु ही प्रयत्नशील है। इस प्रकार विज्ञान विद्या का सहायक सिद्ध न होकर शत्रु सिद्ध हो रहा है।

(ग) विज्ञान विषय का सरलीकरण करने के लिए उसका विग्रह (व्यास या विभाजन, वर्गीकरण) आदि करता है, जिससे एक-एक विज्ञान एक-एक खण्डित तथ्य का अध्ययन मात्र बनकर रह जाता है। दर्शन (विशेष रूप से भारतीय दर्शन) समस्त तथ्यों को समेटकर सब तथ्यों से ऊपर सत्य के प्रति समग्र दृष्टि रखता है। इसे खण्ड दृष्टि स्वीकार्य नहीं।

(घ) विज्ञान अनेकता को एक बार मानकर विश्लेषण द्वारा उसका बौद्धिक संस्थापन कर पुनः संश्लेषण की बौद्धिक प्रक्रिया द्वारा उसे एक सिद्ध करना चाहता है, किन्तु बहुतों में एकत्व की दृष्टि न होने के कारण उसे मूलभूत एकत्व का प्रमाण मिलना असम्भव-सा हो जाता है। भारतीय दर्शन एक से अनेक की व्याख्या करता है और अनेकता में भी एकता की दृष्टि को ओझल नहीं होने देता। इसलिए नाम-रूप की अनेकता के पीछे छिपी हुई परम तत्त्व की एकता को खोज लेता है।

(ङ) कुछ लोगों की धारणा है कि यदि समस्त विज्ञानों को एकत्र किया जाए तो सम्भवतः भारतीय दर्शन की दृष्टि प्राप्त हो जाएगी। किन्तु, यह भी सम्भव नहीं। बहुत से अलग-अलग टुकड़ों को इकट्ठा रख देने से कोई यंत्र नहीं बन जाता। शरीर के अवयवों का संग्रह करने से कोई जीवित मनुष्य नहीं बन जाता। भारतीय दर्शन की मौलिक दृष्टि उस परम सत्य को खोजने में लगी है, जो मात्र बाह्य दृश्य न होकर दृश्य की सत्ता का साक्षी द्रष्टा है। प्रत्येक दृश्य अपनी सत्ता और सत्यता के लिए किसी द्रष्टा पर, द्रष्टा के दर्शन पर निर्भर करता है। अतः द्रष्टा को जानना दृश्य को जानने की अपेक्षा अधिक महत्त्वपूर्ण है। जब तक द्रष्टा को नहीं देखा तब तक सब दृश्य धोखा है। जब तक ज्ञाता स्वयं अज्ञात है तब तक सब ज्ञान अज्ञान

है। विज्ञान दृश्य को खोजता है दर्शन द्रष्टा को खोजता है। अत: दोनों की दृष्टियों में मौलिक मतभेद है।

(च) अरस्तू को उसके गुरु प्लेटो ने समझाया कि फिजिक्स (भौतिकी) से ऊपर एक और विज्ञान है, जिसे तत्त्व ज्ञान कहा जाता है। भारत में सनत्कुमारजी ने देवर्षि नारद को यही समझाया कि दृश्य का ज्ञान अपराविद्या है और द्रष्टा का ज्ञान पराविद्या है। किन्तु आज का विज्ञान भौतिकी से ऊपर किसी अतिभौतिकीविद्या या तत्त्वविद्या को मानता ही नहीं।

(छ) भारतीय दर्शन एक आधारभूत तत्त्वविद्या है। परम तत्त्व या परम सत्य की अनवरत साधना है। परम तत्त्व परम चैतन्य रूप है। प्रकृति में उस परम तत्त्व का प्रतिबिम्ब मात्र पड़ता है। क्योंकि प्रकृति स्वयं जड़ है। इसलिए वह अपने आप में किसी सत्य का उद्घाटन नहीं कर सकती। प्रकृति में पुरुष का जो क्षीण-सा प्रतिबिम्ब पड़ता है, उसी से प्रकृति अपने रहस्यों को थोड़ा-थोड़ा खोलने लगती है। विज्ञान सीधे पुरुष का अध्ययन न कर प्रकृति पर पड़ने वाले पुरुष के आभास मात्र का अध्ययन करता है। प्लेटो की उपमा में वैज्ञानिक ऐसे हाथ बंधे हुए कैदियों के समान हैं जिन्होंने प्रकाश की ओर पीठ कर रखी है और सामने की दीवार पर पड़ने वाली अपनी ही छाया में सृष्टि के रहस्यों की खोज करते हैं।

(ज) विज्ञान ने परम तत्त्व के विषय में मान रखा है कि वह या तो है ही नहीं या अज्ञेय है। विज्ञान से प्रभावित चिन्तकों ने Logical positivism के नाम से एक नया दर्शन ही गढ़ लिया है जिसके अनुसार परम तत्त्व चूंकि इन्द्रियज्ञान और तर्कशक्ति से परे है इसलिए उसकी सत्ता है, या है ही नहीं, या जानी ही नहीं जा सकती। इस तरह आधुनिक विज्ञान अपने अज्ञान को भी गर्व का विषय मान बैठा है।

(झ) पश्चिमी विज्ञान का उद्देश्य सत्य नहीं अर्थ (Money) है। आज की प्राय: सभी खोजें उद्योग के लिए हो रही है। वे आज विज्ञान का प्रयोग अधिक धन कमाने के लिए और मिलों, कारखानों में उत्पादन को बढ़ाने के लिए, व्यापारिक मण्डियों पर एकाधिकार जमाने के लिए, उत्पादन और अर्थ संचय की प्रतियोगिता में आगे बढ़ने के लिए, घातक हथियारों के निर्माण द्वारा छोटे एवं दुर्बल राष्ट्रों की भूमि, सम्पत्ति एवं स्वाधीनता को छीनने के लिए और निर्धन, दुर्बल राष्ट्रों को परस्पर में लड़ाकर अपने हथियारों के विक्रय की मंडी का विस्तार करने में कर रहे हैं। आज यंत्रकार या अभियन्ता (इंजीनियर) को अधिक बड़ा वैज्ञानिक माना जाता है। क्योंकि वह उत्पादन एवं अर्थोपार्जन करने के लिए अधिक उपयोगी है। इसकी तुलना में भारतीय दर्शन का उद्देश्य सत्य की प्राप्ति है—निष्काम, निर्लोभ, नि:स्वार्थ भाव से सत्य का अनुसंधान। पाश्चात्य अनुसंधान काम और अर्थ प्रेरित है। जबकि भारतीय दर्शन का अध्ययन धर्म-मोक्ष प्रेरित है।

(ञ) परम तत्त्व निर्विकार है, किन्तु संसार विकारी है। जहां दर्शन परम तत्त्व की खोज करता है वहां विज्ञान का अध्ययन विकाररूप संसार में सीमित रहता है। इसलिए विज्ञान का कोई स्थिर आधार नहीं है। आज जिसे तथ्य मानकर अध्ययन किया जाता है कल वही अतथ्य सिद्ध हो जाता है। बहुत सारे तथ्यों को बटोर लेने पर भी सत्य का दर्शन फिर भी नहीं होता। तथ्य देश-काल की दया पर रहने के कारण परिवर्तनशील है और सत्य देश-कालातीत होने कारण अखण्ड, एकरस अपरिवर्तनीय है।

(ट) आधुनिक विज्ञान की प्रमाण प्रणाली काल्पनिक एवं अयुक्त संगत है। विज्ञान कल्पना पर कल्पना लादता जाता है तथा इस प्रकार विज्ञान की मिथ्या कल्पना का भण्डार बढ़ता जाता है। जैसे पदार्थ की कल्पित परिभाषा, फिर यह कल्पना की पदार्थ ही अन्तिम सत्य है। फिर यह कल्पना की सृष्टि में कोई नैतिक नियम नहीं है। फिर यह कल्पना कि कोई सृष्टिकर्ता चेतन सत्ता नहीं है। फिर यह कल्पना कि जो कुछ प्रयोगशाला या परखनली से न जांचा जा सके वह सब मिथ्या है आदि-आदि। कल्पना पर कल्पना के पत्तों से ताश का महल खड़ा किया जा रहा है। यदि कोई चोर किसी के धन को या स्त्री को चुराकर ले जाए तो वह कौन से वैज्ञानिक सिद्धान्त के अनुसार गलत है? प्रेम, देशभक्ति, स्नेह, सौन्दर्य आदि कुछ ऐसे तत्त्व हैं जिनके लिए वैज्ञानिक अपने जीवनभर की सारी कमाई एवं जीवन तक समर्पित करने के लिए तैयार हो जाता है। किन्तु, वह वैज्ञानिक प्रयोगशाला में उनकी सत्ता किसी प्रकार सिद्ध नहीं कर सकता।

(ठ) क्लोड Claud Bernurd जैसे प्रसिद्ध वैज्ञानिक ने माना है कि कोई भी विज्ञान बिना पूर्वकल्पना axiom या Pre supposition के एक पग भी आगे नहीं बढ़ सकता। जैसे ज्यामिति में बिन्दु, रेखा आदि के विषय में कुछ पूर्व कल्पनाएं कर ली गई हैं। जो न सिद्ध की जा सकती हैं और न सिद्ध करने का प्रयास किया जाता है। केवल इन्द्रिय अनुभव से विज्ञान का कोई काम नहीं बन सकता।

(ड) आधुनिक विज्ञान इन्द्रियगत दृश्यसंसार का विज्ञान है। स्थूल का विज्ञान है, जिसके प्रयोग से यंत्र आदि के लाभ प्राप्त हो सकते हैं। फलस्वरूप लोगों का अंध-विश्वास स्थूल वस्तुओं में तथा उन पर आधारित विषय-भोगों एवं स्वार्थों में बढ़ गया है। आधुनिक विज्ञान का आधुनिक सभ्यता को यही सबसे विचित्र वरदान है। भारतीय दर्शन में और प्राचीन भारतीय परम्परा में विषय-लोलुपता तथा स्वार्थ भोग आदि को तुच्छ एवं त्याज्य माना गया है। जीवन का मुख्य उद्देश्य विषय भोग न होकर विश्वनाथ, विश्वंभर अथवा वैश्वानरपद की प्राप्ति है। आधुनिक विज्ञान ने भगवान् का तिरस्कार कर भोगों का पुरस्कार दिया है। मानव जीवन के प्रधान उद्देश्य को ठुकराकर गौण पशु प्रवृत्तियों की पूर्ति (रोटी,

कपड़ा, मकान, भोग विलास) में लग गया है। सर्वोच्च उद्देश्य में मानव मात्र की एकता निहित है। विषय भोग में मानव-मानव में स्वार्थ, स्पर्धा, संघर्ष, युद्ध, अशांति का विस्फोटक (बारूद) भरा हुआ है।

(ढ) भारतीय दर्शन परम्परा में विज्ञान के उन रूपों को जो जीवन के सर्वोच्च लक्ष्य की प्राप्ति में सहायक नहीं हो सकते हैं गौण समझकर छोड़ दिया गया था। आधुनिक विज्ञान में ऐसे ही गौण विषयों को खुला अवकाश मिला है और आज के वैज्ञानिक उन्हीं विषयों के अध्ययन में अपनी सारी शक्ति का क्षय कर रहे हैं। इसलिए पिछली दो शताब्दियों में इन्द्रियज्ञान पर आधारित विज्ञानों की बाढ़-सी आ गई है। प्राचीनकाल में ज्योतिष नामक विज्ञान वैदिक अध्यात्मज्ञान में सहायक होने के कारण एक उपवेद के रूप में प्रतिष्ठित था। किन्तु आधुनिक विज्ञान ने ज्योतिष के दो अंग कर दिए—फलित और गणित ज्योतिष। विज्ञान ने गणित ज्योतिष का इतना विस्तार किया कि इसका फलित ज्योतिषरूप अंग सर्वथा नष्ट हो गया। इसी प्रकार प्राचीन रस विज्ञान, विश्व ब्रह्माण्ड की रचना का ही विज्ञान था। पिण्ड और ब्रह्माण्ड के समानधर्मी होने के कारण इसका प्रयोग मानव जीवन पर होता था। भौतिक जीवन के प्रयोग को आध्यात्मिक जीवन में भी उतारा जाता था।

नागार्जुन रसशास्त्र का भी प्रणेता था और दार्शनिक शून्यवाद का भी। महर्षि पतंजलि ने शरीर के उपचार के लिए आयुर्वेदशास्त्र दिया। वाणी के उपचार के लिए व्याकरणशास्त्र दिया और मन के उपचार के लिए योगशास्त्र दिया। शिक्षा, छन्द, निरुक्त, व्याकरण, ज्योतिष, कल्प यह छह वेदांग हैं। इन छह अंगों सहित जो वेद को जाने उसे षड्-अंगी कहा जाता था। इसी प्रकार उपवेद भी वेद विद्या में सहायक थे। आयुर्वेद, धनुर्वेद, स्थापत्य वेद (यांत्रिक), गंधर्व वेद (संगीत)—ये चारों वेद हैं। भारत में सभी विज्ञान वेद वेदांत विद्या में सहायक, ब्रह्मविद्या के आज्ञाकारी अनुचर बनकर सेवा करते थे। आधुनिक विज्ञान अध्यात्म के प्रति विद्रोह करके अपनी भोगवाद की अलग दुकान चला रहा है। आज का रसायन विज्ञान प्राचीन रस विज्ञान से उत्पन्न नहीं हुआ। वेद में कहा गया—'रसो वै सः।' अर्थात् वह परब्रह्म परमेश्वर साक्षात् रसरूप है। वहां रस ब्रह्मानन्द रस के अर्थ में है। जब वह रस रूप परमेश्वर अपने रस का स्वयं रसास्वादन करने के लिए अपने अनेक रूप बनाकर आनन्द लीला करने लगता है तब उसे महारस लीला कहते हैं। इस आध्यात्मिक रस में सहायक विचार सागर का बौद्धिक तत्त्व ज्ञानरस है। दर्शन में विचार की गांठ खुल जाने पर या किसी समस्या का समाधान हो जाने पर जो समाधानकारक रस मिलता है। वह बौद्धिक रस, अध्यात्म रस में सहायक माना गया। मन में प्रेम, भक्ति, स्नेह, आत्मीयता से जो सुख मिलता है वह भक्ति रस भी अध्यात्म रस में सहायक माना गया। मानव शरीर में जो रसना नामक ज्ञानेन्द्रिय

है उसका उद्देश्य भी शरीर के पोषण के लिए आवश्यक भोज्य पदार्थों का रस चखना और अन्तर के सुख के लिए रसना द्वारा हरिनाम रसामृत का पान करना है। संतों ने कहा है—

सोई रसना जो हरि गुण गावे।

गुरुनानकदेव कहते हैं—

आखां जीवां विसरे मर जावां।

अर्थात् तेरे नाम स्मरण करने में जीता हूं और विसरने पर मर जाता हूं। इस प्रकार पंच महाभूतों में रसतत्त्व (जल), मात्राओं में रस तन्मात्रा, इन्द्रियों में रसना इन्द्रिय, सबका उद्देश्य उस परमरस को पाना है। शरीर के भीतर अनेक प्रकार के द्रव्य हैं जिन्हें रस कहा जाता है। शरीर का पोषण करने वाला अन्नरस, फलरस, वनस्पति रस, गोरस आदि सभी का उद्देश्य एक ही है। तन को पुष्ट करके, मन को तुष्ट करके, बुद्धि को सुष्ट, आत्मा को सन्तुष्ट करके परमरस को पाना। रस का अर्थ अमृत भी है। शरीर को दीर्घजीवी बनाने वाले अमृत का उद्देश्य भी यही है कि मृत्यु पर सदा विजय प्राप्त करने वाला सच्चा अमृतपद प्राप्त करे। अमृत स्वरूप परब्रह्म परमेश्वर के रस का पान करे।

नौव निधि अमृत प्रभु का नाम
देही में तिसका विश्राम।

अर्थात् नवनिधि के समान सबसे मूल्यवान और सच्चा अमृत स्वरूप प्रभु का नाम है तथा वह अमृत प्रभु मानव के हृदय मन्दिर में विराजमान है।

योगी लोग खेचरी मुद्रा में अपनी जिह्वा को उलटाकर ऊपर तालु में लगा देते हैं और ब्रह्मरंध्र से टपकने वाले अमृत रस का पान करते हैं।

शरीर में कोई रोग लग जाने पर शरीर के उपचार के लिए आयुर्वेद में अनेक औषधियों का शोधन करके निर्माण किया जाता है। उन्हें रसायन कहते हैं। उनका उद्देश्य भी तन को रस द्वारा स्वस्थ करके उसे अध्यात्म रस के लिए पात्र बनाना है। आयुर्वेद में पारे को भी रस कहते हैं। पारे के शोधन से जो रसायन बनता है वह शरीर को विशेष पुष्टि प्रदान करता है। **भारत में समस्त रसों का अन्तिम उद्देश्य परमरस को प्राप्त करना ही रहा है।** इसी प्रकार काव्य रस, संगीत रस, नाट्य रस आदि सभी परमरस की ओर उन्मुख रहे हैं।

इसकी तुलना में आधुनिक रसायन विज्ञान Chemistry का ब्रह्मानन्द रस से दूर-दूर का भी सम्बन्ध नहीं है। मध्यकाल में कुछ ऐसे वैज्ञानिक हुए हैं जो रस विज्ञान का मूल उद्देश्य भूलकर धौंकनी और कोयला भट्टी के कई निरर्थक प्रयोग करके कुछ भौतिक वस्तुएं बनाने या पारे से सोना बनाने के लोभ में क्रियाकलाप करते रहे। ऐसे

ही धौंकनी में धौंकने वाले, कोयला फूंकने वाले लोभी आधुनिक रसायन विज्ञान के जनक बन बैठे। इसी रसायन विज्ञान ने ही खोज करते-करते लगभग सवा सौ तत्त्व Element खोज निकाले हैं। जहां भारतीय रस विज्ञान का उद्देश्य ब्रह्मानन्द रस की प्राप्ति में सहायता करना था। परम तत्त्व की उपलब्धि रहा। वहां आज के रसायन विज्ञान ने कोयला, गंधक, हाइड्रोजन, नाइट्रोजन जैसे जड़ तत्त्वों की खोज में ही अपने विज्ञान की सर्वोच्च उपलब्धि मान ली है। विज्ञान ने हरि-सा हीरा छोड़कर जड़ता का कोयला खोज निकाला। महात्मा रविदास ने कहा है—

हरि सा हीरा छाड़ि के, करे और की आस,
ते नर यमपुर जाइबे, सत भाखे रविदास।।

(त) वर्तमान मनोविज्ञान भी अंग्रेजों के इन्द्रियानुभववाद तथा 18वीं शताब्दी के यूरोपीय भोगवाद का फल है। भारतीय दर्शन में मनोविज्ञान योग के मनन-चिन्तन, ध्यान, एकाग्रता, समाधि आदि के रूप में ब्रह्म-दर्शन या आत्मदर्शन के लिए साधना की सरणी है। किन्तु आधुनिक पाश्चात्य मनोविज्ञान अध्यात्म की पूर्ण उपेक्षा कर मानव को तुच्छ भोग विलास, स्वार्थ की ओर प्रवृत्त करने वाला विज्ञान बन गया है। फ्रॉयड जैसे मनोवैज्ञानिकों ने तो मनोविज्ञान में कामुकता का नग्न एवं अमर्यादित विश्लेषण करके मन को विशेष ज्ञान की ओर प्रवृत्त करने के स्थान पर मन को विकृत ज्ञान की ओर उन्मुख कर दिया है। फ्रॉयड कहता है—'बहुत समय से लोग सृष्टिकर्ता परमेश्वर की खोज करते चले आये हैं। किन्तु आज तक उसे पा नहीं सके। मैंने ईश्वर को कान से पकड़कर सिंहासन से नीचे गिरा दिया। उसके स्थान पर काम Sex को प्रतिष्ठित किया जो वास्तविक सृष्टिकर्ता है।' इस प्रकार आधुनिक मनोविज्ञान के उद्देश्य भ्रष्ट होने से मानवता के पतन का राजमार्ग खुल गया है।

वर्तमान गणित विज्ञान भी प्राचीन पाइथोगोरस के गणित की बाहरी छाल के सिवा और कुछ नहीं है। प्राचीन भारत के भी सभी गणितज्ञ गणित को ब्रह्म प्राप्ति का सहायक साधन मानते थे। गणित की शान्त गणना के पश्चात् वे अनन्त की पहचान के लिए साधना में लग जाते थे। शून्य का एक पूरा तत्त्व दर्शन यहां विकसित हुआ है। गणित के प्रश्नों एवं ज्यामिति के प्रमेयों को गणित के सिद्धान्तों के अनुसार हल करते हुए एक मानसिक अनुशासन प्राप्त होता है। जिसका सदुपयोग मन की एकाग्रता तथा भगवान् के मनन-चिन्तन में किया जा सकता है। पुरी के शंकराचार्य स्वामी भारतीय कृष्णतीर्थ ने स्वयं वेदान्त का महान् चिंतक होते हुए भी चौदह सूत्रों के वैदिक गणित की रचना की जिससे गणित का बड़ा से बड़ा और कठिन से कठिन प्रश्न तुरत हल हो जाता है। स्वामी रामतीर्थ ने गणित और वेदान्त पर कई व्याख्यान करके एक ग्रंथ ही रच डाला। पाइथोगोरस

एक ओर ज्यामिति के प्रमेय प्रस्तुत करता था और दूसरी ओर आत्मा की अमरता के सिद्धान्तों का प्रतिपादन करता था। भारत में ज्योतिष और गणित मिले-जुले थे। क्योंकि जो गणित धरती की वस्तुओं की गणना के लिए प्रयोग होता वही गणित आकाश की ज्योतियों की गणना के लिए प्रयोग किया जाता। आकाश के ग्रह-नक्षत्रों एवं ज्योतियों की अनन्तर गतियां, कोणों एवं दिशाओं का आकलन करते-करते भारत का ज्योतिषी उस परम ज्योति के दर्शन के लिए भी साधना करता था। गणित के अंकों में सबसे प्रथम अंक एक ही है। वह सरलतम अंक है। उसी एक को दो बार गिनने से दो बना, एक बढ़ाने से तीन फिर 4, 5, 6, 7, 8, 9 आदि बने।

अतः विचार कर देखने से रहस्य खुला कि एक ही एक से नौ तक समस्त अंकों में तथा इन अंकों से बनने वाली लाख, करोड़, अरब, बड़ी से बड़ी राशियों में निर्लिप्त भाव से समाया हुआ है। समस्त राशियां एक पर विभाजित हो जाती हैं। क्योंकि इकाई सबमें व्याप्त है। सभी राशियां दो पर, तीन पर या 4, 5, 6, 7, 8 और 9 पर विभाजित नहीं होती हैं। विभाजन का रहस्य यही है कि हर राशि को तोड़ते-तोड़ते अन्त में एक ही बचता है। इस प्रकार एक ही सबकी रचना करता है। सब राशियां एक पर टिकी हुई हैं। एक ही सब में व्याप्त है और टूटने पर अन्त में सब राशियां एक ही में समा जाती हैं। इस प्रकार गणित के इस पाठ से अनेकता में एकता का बोध होता है। इस विश्व के बहुत्व के पीछे जो छिपा हुआ एकत्व है। उसकी खोज में प्रेरित करना यही गणित का उद्देश्य है—

एको देवः सर्वभूतेषु गूढ़ः
सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा।
कर्माध्यक्षः सर्वभूताधिवासः
साक्षी चेता केवलो निर्गुणस्च।।

नौ का अंक सबसे बड़ा अंक है। जो सबसे बड़ा है उसी को वृहत् या ब्रह्म कहते हैं। वह नाना रूप परिवर्तन करने के उपरान्त भी अपरिवर्तनीय रहता है। नौ के दो गुणा करें तो 9×2=18 इसमें दो अंक है। एक और आठ का योग करने पर 9 ही बनते हैं। इस प्रकार 3 की गुणा

9×3=27	2+7=9
9×4=36	3+6=9
9×5=45	4+5=9
9×6=54	5+4=9
9×7=63	6+3=9

9×8=72 7+2=9

9×9=81 8+1=9

इस प्रकार सबसे बड़ा अंक अविकारी है। एक सबसे सरल है। नौ सबसे वृहत् है। एक से अधिक सरल या छोटा कोई अंक हो नहीं सकता। 9 को जितना चाहे गुणा करें अनेक गुणा होकर भी वह 9 का 9 बना रहता है। इसी प्रकार आत्मा या ब्रह्म अणु से अणु और विराट् है।

अणोरणीयान्महतो महीयानात्मास्य जन्तोर्निर्हितो गुहायाम्।
तमक्रतुः पश्यति वीतशोको, धातुप्रसादान्महिमानमात्मनः।।

कठ. उ. 1/2/20

शून्य की अपनी ही महिमा है। शून्य का चिह्न गोलाकार बनाया जाता है। मानो वह भूगोल, खगोल या ब्रह्माण्ड का प्रतीक हो। किन्तु उसका अर्थ है नितान्त अभाव अर्थात् कुछ नहीं। जो दीख रहा है, भास रहा है। किन्तु तत्त्वतः कुछ नहीं है। यह जगत् प्रपंच, शून्य या माया कहा जाता है। जो वस्तु प्रतिभासिक सत्ता है वह केवल आँख का धोखा है। वह सदा टिकने वाली नहीं है। वह देखते-देखते शून्य में लीन हो जाएगी। यदि इस शून्य (माया) के पीछे मनुष्य जीवन भर दौड़ता रहे तो उसके हाथ कुछ भी नहीं लगेगा। गणित में एक के अंक के पहले शून्य लगाने से उसका मूल्य कुछ भी नहीं होगा। और एक के बाद में जितने शून्य लगाते जाएंगे उतना ही मूल्य बढ़ता जाएगा। इसका दार्शनिक अर्थ यही है कि ईश्वर से पहले माया की उपासना करने से उसका मूल्य शून्य ही रहेगा। और ईश्वर की उपासना करके ईश्वर के अधीन माया को देखेंगे तो उसका मूल्य 10 गुणा, 100 गुणा, लाख गुणा..... बढ़ता ही जाएगा। अतः पुरुष के अधीन ही प्रकृति का मूल्य है। पुरुष से पहले या पुरुष से अलग होकर उसका मूल्य शून्य है। लक्ष्मी के पीछे पागल होकर दौड़ने की अपेक्षा यदि हम नारायण की उपासना करें तो लक्ष्मी उनके चरणों में विराजमान मिल जाएगी। गिनती की सुविधा के लिए परमतत्त्व को एक कहने से काम चल जाता है। किन्तु, गंभीर चिन्तन करने पर पता चलता है कि उसे एक कहने में भी हम उसे सीमाबद्ध कर रहे हैं। मनुष्य द्वारा आविष्कृत गिनती का प्रथम अंक एक है उस अनादि अनन्त परमतत्त्व को यदि मनुष्य अपनी सीमित वाणी से गिन सके तो यह असीम का अपमान होगा और एक की कल्पना भी उसे अनेकता से अलग एक स्थूल वस्तु जैसा एक बना देगी। वास्तव में वह अनेक में एक के समान सर्वव्यापक, अलौकिक सत्ता है। जब वह सब कुछ है तब उसे एक कहने में सीमा का बंधन बन जाएगा। यदि उसे दो कह दें तो परमतत्त्व का अपमान होगा। क्योंकि उसकी तुलना करने वाला कोई दूसरा है ही नहीं। इसलिए भगवान् शंकराचार्य ने और उससे भी पहले वेद ने भी परम तत्त्व को अद्वैत कहा। 'शान्तम् शिवम् अद्वैतम्' कहा।

सब गिनतियां शांत है। किन्तु प्रभु अनन्त है। इसलिए शांत की गणना के पश्चात् भारतीय चिन्तन अनन्त (Infinite) की खोज में प्रवृत्त होता है। वह अनन्त ही पूर्ण है। अनन्त का गणित है—

अनन्त + अनन्त = अनन्त

अनन्त – अनन्त = अनन्त

अनन्त × अनन्त = अनन्त

अनन्त ÷ अनन्त = अनन्त

इसी प्रकार ज्योतिर्विज्ञान में जिन ज्योतियों का अध्ययन किया जाता है उनकी ज्योति सीमित एवं शांत होती है। सूर्य की ज्योति भी बादल से ढक जाती है, रात्रि में दिखाई नहीं देती। पूर्ण सूर्यग्रहण में दिन के समय धरती पर काला अंधेरा छा जाता है। अतः सीमित है। इन ज्योतियों के परे जो परम ज्योति है जिससे सब ज्योतियां ज्योतित होती हैं। उसको जानना जीवन का सर्वोच्च लक्ष्य है। किन्तु आधुनिक गणित विज्ञान में केवल गणित का बाहरी छिलका बचा है, अन्दर का सार लुप्त हो गया है। आज का गणितज्ञ संख्या के महत्त्व और अर्थ को न समझ कर न सांख्य के 25 तत्त्वों में रुचि लेता है। न अद्वैत, द्वैत, त्रेत में रस लेता है। न ही अनेकता में एकता खोजता है, न परम दूरी में परम निकटता खोजता है। न शून्य और शून्यवाद को समझता है, न अनन्त के लिए जिज्ञासा रखता है और न परम ज्योति की दर्शन की इच्छा रखता है। वह मात्र अंक, रेखा और भिन्न-हर रूपी सूखी हड्डियों को चबाता रहता है।

(थ) ब्रह्मविद्या के इच्छुक व्यक्ति के लिए विज्ञानों का मूल्य वहीं तक है जहां तक वे ब्रह्मविद्या से सम्बन्धित, उसमें प्रेरक एवं सहायक हों। जो व्यक्ति ज्ञान की उच्च भूमिका पर पहुंच चुका है उसके लिए निम्न श्रेणी के साधारण विज्ञानों का कोई विशेष मूल्य नहीं रहता। जिस अपराविद्या की सीढ़ी से जिन विज्ञानों की पेड़ियों पर चढ़कर साधक पराविद्या या आत्मज्ञान की उच्च भूमिका पर पहुंचता है वहां पहुंचने के पश्चात् उसके लिए सीढ़ी या पेड़ी का महत्त्व समाप्त हो जाता है। अनित्य, अस्थिर फल के लिए शाश्वत एवं सर्वव्यापी विद्या को छोड़ना मूर्खता मात्र है। स्वामी रामतीर्थ कहते हैं कि जिस व्यवहार की सीढ़ी से मैं परमार्थ की छत पर पहुंचा हूं अब उस सीढ़ी को ठोकर मारकर गिरा देता हूं क्योंकि मुझे पुनः नीचे नहीं उतरना है। भारतीय परम्परा में विज्ञान, आत्मज्ञान में सहायक था। फिर भी आत्मज्ञानी लौकिक विज्ञान के जंजाल को ठुकरा देता था। पश्चिमी विज्ञान तो आत्मज्ञान की ओर सीढ़ी लगाता ही नहीं। उसकी सीढ़ी तो भोग विलास के गर्त की ओर जाने वाली है। अतः आध्यात्मिक साधक को इस विकृत ज्ञान से सदा सावधान रहना पड़ता है।

(द) सनातन विद्या के अन्तर्गत जिन विज्ञानों को पढ़ाया जाता था। उनके परस्पर दो सहकारी कार्य थे—

(i) तत्त्व विद्या का अंग होने से संसार के समस्त क्षेत्रों की आधारभूत एकता प्रकट करना।

(ii) ब्रह्मविद्या की ओर ले जाने वाली ऐसी सीढ़ियों का काम करना जिनके द्वारा बुद्धि क्रमशः जड़ संसार को छोड़कर ब्रह्मविद्या की ओर अग्रसर हो सकती है। इन दोनों दृष्टियों से वर्तमान विज्ञान लगभग व्यर्थ है।

(iii) ब्रह्मविद्या की प्रवृत्ति जड़ से चेतन की ओर ऊर्ध्वगामी प्रवृत्ति है। किन्तु आधुनिक विज्ञानों की प्रवृत्ति चेतन से जड़ की ओर अधोगामी प्रवृत्ति है।

विश्व की परिधि में जगत् या प्रकृति है। उसके केन्द्र में जगदीश्वर या परम पुरुष है। अध्यात्म अन्तर्मुखी साधना से हमें परिधि से केन्द्र की ओर ले जाता है। आधुनिक विज्ञान की बहिर्मुखी प्रवृत्ति हमें केन्द्र से परिधि की ओर ले जाती है।

(ध) भारतीय दर्शन परम्पराओं में विज्ञान ब्रह्मविद्या की शिक्षा में सहायक था। जब विद्या के किसी रूप की स्थापना ऊपर से नीचे के क्रम से हुई हो अर्थात् ब्रह्म से जीव, पुरुष से प्रकृति की लीला का विकास हुआ हो तो उसकी शिक्षा नीचे से ऊपर के क्रम से हो सकती है। अर्थात् प्रकृति के अध्ययन के लिए भिन्न शास्त्रों एवं विज्ञानों की रचना कर धीरे-धीरे परम तत्त्व की ओर अग्रसर करना। यही सनातन भारतीय विद्या का उद्देश्य था। इस प्रकार अनेक विद्याएं एक तत्त्व के दर्शन में दृष्टान्त रूप बनती हैं जिनकी सहायता से विविध प्रकार की बुद्धियों को तत्त्व दर्शन में सुविधा हो। बहुविध प्रकृति के वश में रहते हुए जीव की बुद्धि बहुतों में लीन रहती है। इसलिए उसको एक तत्त्व की ओर ले जाने के लिए बहुविध रूपों की सहायता लेनी पड़ती है। दृष्टान्त रूप से प्रकृति के पांच तत्त्वों का अध्ययन कुछ संदेश एवं संकेत देता है—

(i) पृथ्वी तत्त्व या मिट्टी, पत्थर की कोई वस्तु पृथ्वी की ओर ही वापस लौटाना चाहती है। जल समुद्र की ओर ही बढ़ता है। अग्नि की लपट सूर्य की ओर बढ़ती है। वायु आकाश की ओर बढ़ती है। आकाश अपने आप में अखण्ड-अविभाजित और सर्वव्यापक ही रहता है। प्रकृति के इन दृष्टान्तों से जीव को यह शिक्षा मिलती है कि उसे परम शान्ति केवल अपने मूलस्रोत परब्रह्म परमेश्वर में मिलने पर ही प्राप्त हो सकेगी।

(ii) स्थूल से सूक्ष्म अधिक व्यापक और अधिक शक्तिशाली है। जल पृथ्वी को अपने में लय कर लेता है। अग्नि जल को खा जाती है। वायु अग्नि का ताप उतार देता है और आकाश समस्त वायु को एक ही ग्रास में खाकर खाली

पेट पड़ा हुआ है। आकाश से अधिक सूक्ष्म मन है। मन से बुद्धि, बुद्धि से अहंकार और अहंकार से सूक्ष्म आत्मा है। इस प्रकार जो आत्मा सबसे सूक्ष्म है वही सबसे शक्तिशाली और सर्वव्यापक है।

(iii) सूर्य सारे जगत् का चक्षु है। किन्तु वह किसी के व्यक्तिगत चक्षुदोष से लिपायमान नहीं होता। वह मल को भी प्रकाशित करता है, कमल को भी। परन्तु न मल से दूषित होता है, न कमल से सुवासित। वह सबका प्रकाशक सदा निर्लिप्त रहता है। उसी प्रकार ब्रह्म सर्वप्रकाशक एवं सर्वथा निर्लिप्त है।

सूर्यो यथा सर्वलोकस्य चक्षुर्न लिप्यते चाक्षुषैर्बाह्यदोषैः।
एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा न लिप्यते लोकदुःखेन बाह्यः।।

कठ.उ. 2/2/11

(iv) जिस प्रकार आकाश सब ओर व्याप्त है। अखण्ड है। वह घटाकाश-मठाकाश में बंटा हुआ दीखने पर भी वास्तव में अविभक्त, अनबंटा ही रहता है। जिस प्रकार आकाश सूर्य के ताप से, काले बादलों की कालिमा से, वर्षा के जल से, विषैली गैसों के धुएं से सदा निर्लिप्त ही रहता है। सारा ब्रह्माण्ड उसकी गोदी में सोता है। किन्तु वह स्वयं किसी की गोदी में नहीं सोता। इस प्रकार ब्रह्म सर्वव्यापक, अखण्ड, निर्लिप्त एवं सबका अन्तिम आश्रय है। इसलिए उपनिषद् में ऋषि ब्रह्म का स्वरूप समझाने के लिए प्रारम्भ में आकाश की उपमा देते हैं। इसलिए कहा गया है—

खम् ब्रह्म अर्थात् आकाश ही ब्रह्म का रूप है। जीव लक्ष्य के जितना समीप पहुंचता है विभिन्न विज्ञानों के भिन्न-भिन्न मार्ग उतने ही एक-दूसरे में लीन होते जाते हैं। जिस प्रकार सभी वस्तुओं की तात्त्विक एकता के कारण जड़ वस्तु भी (देवता की मूर्ति, शिवलिङ्ग) तत्त्व की प्रतिमा बन सकती है। इसी प्रकार कोई भी विज्ञान यदि उसका प्राकट्य सनातन विद्या के अनुसार हुआ है तो वह आत्मविद्या की प्रतिमा बन सकता है।

जिस प्रकार विज्ञान आत्मविद्या में सहायक था उसी प्रकार भारतीय कलाएं भी आत्मविद्या में सहायक थी। दुर्भाग्य से आधुनिक पाश्चात्यों को और पश्चिम से प्रभावित पौरस्त्यों (पूरब के आधुनिक जन) को भारत की उन प्राचीन कलाओं का और उसके मर्म का कोई ज्ञान नहीं है।

श्री रेनो गेनो के शब्दों में—'वर्तमान विज्ञान को अज्ञानरूप ज्ञान कहा जा सकता है। वह जड़ ज्ञानरूप है और जड़ संसार से अतीत सूक्ष्मलोकों से किसी प्रकार भी परिचित नहीं है। यह एक ऐसा विचित्र ज्ञान है जो अपनी सीमा से परे रहने वाली वस्तुओं के अस्तित्व तक को नहीं मानता। किसी भी आधारभूत

तत्त्व को नहीं जानता एवं अपने उद्देश्य को छोड़कर कोई दूसरा लक्ष्य नहीं देख सकता।' श्री रेनो गेनो विज्ञान का मूल्यांकन करते हुए कहते हैं—'आत्मविद्या और परम सत्य से उसका कोई सम्बन्ध न होने के कारण यह विज्ञान निरर्थक एवं भ्रान्त प्रत्यय के अतिरिक्त कुछ नहीं। वह न कहीं से आता है न कहीं जाता है। इन्द्रियानुभूति की जड़ सीमाओं से घिरा हुआ यह नवविज्ञान अपने को स्वतंत्र मानता है।' वे पुनः कहते हैं—'वह विज्ञान, जिस पर वर्तमान संसार इतना गर्व करता है वास्तविक विज्ञान का जो आत्मविद्या या सनातनी विद्या से भिन्न नहीं है—एक उच्छिष्ट, भ्रमपूर्ण अंशमात्र है।' वर्तमान विज्ञान ज्ञान को अधम जड़ वस्तुओं के अध्ययन में आबद्ध करके निरर्थक एवं बुद्धिहीन बन गया है।

आधुनिक युग के वैज्ञानिकों की पदार्थ एवं ऊर्जा के विषय में नवीनतम खोजें—आधुनिक भौतिकी ने पता लगाया कि भौतिक पदार्थ अत्यन्त सूक्ष्म है और नित्य परिवर्तनशील है। उसके केन्द्र में प्रोटोन और बाहरी परिधि में इलेक्ट्रॉन तीव्र गति से घूमते रहते हैं।

बेक्रेल ने एक्सरे X-Ray किरणों की गवेषणा करते समय देखा कि यूरेनियम से विकिरणें स्वतः निकलती रहती हैं।

मैडम क्यूरी ने सिद्ध किया कि रेडियम से स्वतः विकिरणें निर्गत होती रहती हैं और अन्त में रेडियम शीशा में रूपान्तरित हो जाता है।

रदरफोर्ड ने कहा कि परमाणु के केन्द्रक को तोड़ा जा सकता है तथा उसके टूटने पर केन्द्रक से विकिरण निर्गत होते समय उसमें अत्यन्त प्रबल ऊर्जा प्रकट होती है। विकिरण कणों की गति कई हजार मील प्रति सेकंड तक होती है। इस ऊर्जा को Radio Active Energy कहा गया।

मैक्स प्लांक ने कहा कि ऊर्जा का विकिरण पुंज के रूप में होता है। उसे ऊर्जा पैकेट कहा जाता है। इस सिद्धान्त को क्वांटम थ्योरी कहा जाता है।

नील्सबोर ने खोज की कि परमाणु में Electron केन्द्रक के चारों ओर कई कक्षाओं में चक्कर लगा सकता है।

जब Electron एक कक्षा से दूसरी कक्षा में छलांग लगाता है तब प्रबल ऊर्जा का विकिरण होता है।

लुइडी ब्रोगली ने खोज की कि प्रकाश ऊर्जा तरंगों में प्रवाहित होता है जो कणिका की गति को निर्देश देती है।

हाइजनबर्ग ने कहा कि भौतिक पदार्थ के दो पहलू सदा पाये जाते हैं। किसी समय कणिका के रूप में और किसी समय तरंग के रूप में।

हाइजनबर्ग इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि किसी भी तरह से किसी कणिका अथवा तरंग की स्थिति एवं वेग का निश्चित रूप से एक साथ मापन नहीं किया जा सकता।

श्रोडिंजर ने क्वांटम सत्ताओं की एक मौलिक व्याख्या प्रस्तुत की। सारी क्वाटंम सत्ताओं को तरंग कहा जा सकता है। उस पर ब्रोगली एवं हाइजनबर्ग के सिद्धान्तों का प्रभाव पड़ चुका था।

प्रत्येक प्रकार के कण मूल रूप से तरंग हैं। कणिका एवं तरंग को अलग नहीं किया जा सकता।

यदि किसी कण और उस पर विभिन्न बलों का ज्ञान हो तो उसका विभिन्न प्रकार की तरंगों और उनकी ऊर्जाओं के तरंग-फलन के प्रयोग द्वारा परिकलन किया जा सकता है।

किसी भी भौतिक सत्ता के दो पहलू अनिवार्य रूप से होते हैं—कणिका एवं तरंग। इलेक्ट्रॉन केवल मात्र कणिका के रूप में कभी नहीं पाया जा सकता। इलेक्ट्रॉन को सतत विद्युत् आवेश के रूप में पाया जाता है और वह विद्युत् आवेश परमाणविक केन्द्रक के चारों ओर वैद्युतिक क्षेत्र के रूप में फैला हुआ रहता है। इसमें सदा कम्पन होता रहता है।

भौतिक सत्ताएं तरंगों से बनी हैं। वे अत्यन्त गत्यात्मक एवं परिवर्तनशील हैं। न्यूटन युग के भौतिकी के प्रत्ययों में मूलभूत परिवर्तन हो चुका है। भौतिक पदार्थों में तरंग ब्रह्म की चेतना की अभिव्यक्ति है। चेतना भौतिक पदार्थों में भी स्पन्दन के रूप में अन्तर्निहित है।

इस प्रकार भौतिकी की खोजें अणु-परमाणु, केन्द्रक (नाभि), इलेक्ट्रोन, प्रोटोन, न्यूट्रान आदि कणों से होते हुए तरंगकणिका तक पहुंच गई। अन्त में यह निष्कर्ष निकला कि तरंगकणिकाओं में स्वतंत्र इच्छाशक्ति है, उनकी गति के यांत्रिक नियम निर्धारित नहीं किये जा सकते। अर्थात् वे एक चेतन सत्ता हैं। फलस्वरूप भौतिकी में जड़-चेतन का आत्यंतिक विभाजन मिट गया। इसलिए श्रोडिंजर ने स्वयं लिखा है—'अब तत्त्वज्ञान के रहस्यवाद से दूर न रहकर मैं उनका पूरा उपयोग करूंगा। वे आगे कहते हैं सीधे-सादे रूप में यह घोषणा करते हुए मुझे कोई हिचक नहीं कि समान वातावरण में जीवन के अनुभव की व्याख्या करने के लिए वास्तविक भौतिक संसार की स्वीकृति रहस्यात्मक और तात्त्विक है।

वेदान्त दर्शन की स्वीकृति करते हुए वे कहते हैं कि चिद्बिन्दु एक ही है। वह मानते हैं कि चिद्बिन्दुओं का सिद्धान्त वेदान्त दर्शन में परिणत हो जाता है। इस दर्शन के अनुसार, हम सभी चेतन प्राणी एक ही सत्ता के अनेक रूप हैं। वह एक तत्त्व पाश्चात्य शब्दावली में God और उपनिषद् की शब्दावली में ब्रह्म है।

श्रोडिंजर लिखते हैं अद्वैत सिद्धान्त के निम्नलिखित नैतिक निष्कर्ष को हमें स्वीकार करना चाहिए—

समं सर्वेषु भूतेषु तिष्ठन्तं परमेश्वरम्।
विनश्यत्स्वविनश्यन्तं यः पश्यति स पश्यति।।

समं पश्यन्हि सर्वत्र समवस्थितमीश्वरम्।
न हिनस्त्यात्मनात्मानं ततो याति परां गतिम्।।

गीता, 13/27-28

समस्त विनाशशील प्राणियों में समभाव से स्थित विनाशरहित परमेश्वर को देखता है वही (यथार्थतः) देखता है। क्योंकि सर्वत्र समभाव से अवस्थित ईश्वर को समरूप से देखने वाला अपने द्वारा अपने को नहीं मारता। इससे वह परम गति को प्राप्त होता है। प्राणी मात्र के प्रति दया और करुणा के भाव यहां चरम लक्ष्य के रूप में प्रतिष्ठित हैं।

उपनिषदों का अद्वैत सिद्धान्त प्रतिपादित करता है कि प्रत्यक्ष भेद माया है और मूलभूत एकता ही सत्य है।.... साधना का क्रम अनेक जन्मों तक चलता है और अन्ततः साधक को किसी एक जीवन में प्रज्ञा, अवकाश और शुद्ध साधना की इतनी मात्रा उपलब्ध हो जाती है जिससे वह अद्वैत सिद्धान्त को ग्रहण कर मुक्त हो सके। इस प्रकार श्रोडिंजर ने पदार्थ से विकिरण होने वाली ऊर्जा को भौतिक ऊर्जा न कहकर आध्यात्मिक ऊर्जा कहा। एक नोबल पुरस्कार विजेता विश्वविख्यात वैज्ञानिक द्वारा पदार्थ के अन्तिम विश्लेषण पर चेतन एवं अभौतिक सत्ता की स्वीकृति यह सिद्ध करती है कि आधुनिक विज्ञान अब वेदान्त की ड्योढ़ी पर मस्तक झुकाने के लिए आतुर हो उठा है।

1933 में भौतिकविदों को परमाणु के 6 भिन्न-भिन्न प्रकार के कणों के विषय में ज्ञान हो गया था—इलेक्ट्रॉन, प्रोटोन, न्यूट्रॉन, पाजिट्रॉन, न्यट्रीनो और फोटोन। 1947 तक 14 कणों का पता लगाया जा चुका है। 1957 तक 30 कणों का, 1967 में 230 कणों का या तो पता लग चुका है या उनके अस्तित्व की प्राक्कल्पना हो चुकी है। दो परमाणुओं के संयुक्त होने पर एक अणु बनता है। एक ग्राम पानी में 303000000000000000000000 अणु होते हैं। एक इलेक्ट्रॉन का भार 0.000000000000000000000000000911 ग्राम होता है। भौतिक जगत् में पदार्थ के सूक्ष्म कणों एवं तरंगों में एक स्वतःस्फूर्त गति है जिसे किसी चेतन सत्ता का स्पन्दन माना जा रहा है। कुछ वैज्ञानिकों ने जड़ पदार्थ और चेतन स्पन्दन दोनों को सत् मानकर चरम तत्त्व को द्विध्रुवीय माना है अर्थात् वे जड़ चेतन के द्वैत को मानते हैं। रसेल जड़ और चेतन से परे किसी तीसरी

अज्ञात सत्ता की कल्पना करता है। डार्विन और कार्लमार्क्स चेतन को जड़ का ही स्थान्तरण मानते हैं।

श्रोडिंजर, जेम्सजीन्स और एडिंगटन आदि चेतन सत्ता को सर्वोपरि व श्रेष्ठ मानकर उसी का एकछत्र राज्य मानने लगे हैं। सर जेम्सजीन्स के अनुसार भौतिक जगत् का मूल विचार बुद्धियुक्त चेतन स्वरूप है। भौतिक जगत् की घटनाएं बिना किसी सिद्धान्त के मनमाने ढंग की नहीं है। उनमें सामंजस्य, एकरूपता तथा विश्वव्यापी अनुशासन है। उन्हें गणित की भाषा में व्यक्त किया जा सकता है। जेम्सजीन्स के शब्दों में 'भौतिक जगत् में सामंजस्यपूर्ण घटनाओं की रचयिता कोई विचार-बुद्धियुक्त सत्ता है। वह महान् गणितज्ञ प्रतीत होता है जिसको परमेश्वर कहा जा सकता है।' भारतीय वेदान्त दर्शन के अनुरूप जेम्सजीन्स मानता है कि समग्र विश्व का विराट् रूप तथा सूक्ष्म रूप चेतन स्वरूप ही है। समग्र भौतिक जगत् परमेश्वर द्वारा रचित है। भौतिक जगत् और उसकी घटनाएं परमेश्वर के मन में प्रत्यय के रूप में विद्यमान रहती हैं। यह इस भारतीय मान्यता का समर्थन है कि सारी सृष्टि परमेश्वर के संकल्प से प्रकट हुई है। जेम्स जीन्स ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय के आधारभूत स्वरूप में कोई अन्तर नहीं मानता। ये सभी चेतन स्वरूप हैं। चेतना की तीन विधाएं (रूप) हैं। इस प्रकार जेम्सजीन्स ने स्वयं वैज्ञानिक होते हुए भी विज्ञान के अन्तिम तार्किक निष्कर्ष में चैतन्य के प्रतिपादक प्रत्ययवाद अथवा भारतीय वेदान्त का समर्थन किया।

सर आर्थर एडिंगटन ने भी प्रकृति की प्रत्येक घटना में व्यवस्था का निरूपण करते हुए कहा कि भौतिक जगत् एक विश्वव्यापी मनस् (Universal mind) कहा जा सकता है। अनुभव के द्वारा मानव मन के स्वरूप को जाना जाता है। अनुभव के आधार पर मानव मन को यह ज्ञात होता है कि भौतिक जगत् का स्वरूप भी चेतन स्वरूप है। अतः ज्ञाता (चेतन मन) और ज्ञेय (भौतिक जगत्) में कोई अन्तर नहीं है। अतः भौतिक जगत् को मूल रूप से आत्मनिष्ठ कहा जा सकता है। भौतिक तत्त्व का स्वरूप केवल इन्द्रियों या यंत्रों द्वारा नापने से नहीं जाना जा सकता है। उसके स्वरूप को जानने के लिए अर्थ निर्णय की आवश्यकता होती है एवं ज्ञाता अपने चेतन मन की सहायता से भौतिक तत्त्वों का अर्थ निर्णय करता है। अतः भौतिक जगत् के विषय में हम जो कुछ भी खोजते और निष्कर्ष निकालते हैं वह सब हमारी अभौतिक चेतना का ही प्रसाद है। अतः भौतिक जगत् को विश्वव्यापी चेतना कहा जा सकता है। भौतिक जगत् में परिव्याप्त सार्वत्रिक चेतना को अलौकिक ज्ञान द्वारा जाना जा सकता है।

रसेल और सुलिवेल ने जेम्सजीन्स और एडिंगटन की आलोचना की। क्योंकि उन्हें विज्ञान में चैतन्य तत्त्व की स्थापना न रुचती थी और न पचती थी।

किन्तु जेम्सजीन्स, एडिंगटन और श्रोडिंजर आदि की साहसपूर्ण खोजों से यह सर्वमान्य हो गया कि ज्ञाता और ज्ञेय के बीच ज्ञान प्राप्त करने की प्रक्रिया में कोई बाधा नहीं होती। यह तभी है जब ज्ञाता और ज्ञेय के स्वरूप में कोई मूलभूत एकता है। भौतिकी के क्षेत्र में आधारभूत परिवर्तन के कारण मानव विचारधारा में भारी क्रान्ति आ रही है।

पदार्थ और ऊर्जा का सम्बन्ध अन्योन्याश्रयी है। आइंस्टीन ने कहा कि पदार्थ ऊर्जा में बदल जाता है और ऊर्जा पदार्थ में। प्रारम्भ में स्थूल दृष्टि से वैज्ञानिक मानते थे कि जब पदार्थ पदार्थ पर क्रिया करता है तब ऊर्जा प्रकट होती है। जैसे हाथों को रगड़ने से ताप ऊर्जा, अरणियों का मंथन करने से अग्नि, वस्तुओं के टकराने से ध्वनि ऊर्जा, चक्के के घूमने से डायनमो में चुम्बक या विद्युत् ऊर्जा, ताप ऊर्जा के ज्वलंत होने पर प्रकाश ऊर्जा। मोटे तौर पर यह ठीक प्रतीत होता है। किन्तु, पदार्थ के सूक्ष्म अध्ययन से पता चलता है कि पदार्थ के अन्तर में एक प्रचण्ड ऊर्जा भरी हुई है, जो निरन्तर गतिशील है। पदार्थ जड़ और साकार है। ऊर्जा गतिशील एवं निराकार है। दोनों में कोई मौलिक अन्तर नहीं। साकार इन्द्रिय ग्राह्य है और निराकार इन्द्रियातीत है। साकार स्थिर है और निराकार प्रचण्ड गतिमान है। जो दृश्य पदार्थ हैं उसका दृश्य रूप एक माया है, छलना है, धोखा है। क्योंकि तत्त्वतः वह अदृश्य ही है। अतः शंकर का मत कि दृश्य जगत् माया प्रत्यय है विज्ञान द्वारा भी सिद्ध हो रहा है। पदार्थ और ऊर्जा का एक-दूसरे में बदल जाना सिद्ध करता है कि साकार और निराकार में अंततोगत्वा कोई अन्तर नहीं—

सगुनहि अगुनहि नहिं कछु भेदा।
गावहिं मुनि पुरान बुध बेदा।। 1/115/1, मानस

जो परमाणु शांत है वह अपने भीतर प्रचण्ड शक्ति लिए भयंकर शक्तिमान भी है। परमाणु शक्ति द्वारा कृषि कार्य में बहुत अधिक उत्पादन का चमत्कार हो रहा है। कृषि उत्पादन को परमाणु शक्ति के प्रयोग से शतगुणा, सहस्रगुणा बढ़ाया जा सकता है। उसी परमाणु शक्ति से अनेक असाध्य रोगों का उपचार कर जीवों का रक्षण एवं पालन हो सकता है। रेडियम किरणों द्वारा कैंसर का उपचार भी किया जाता है। उसी परमाणु शक्ति के भयंकर सर्वसंहारक रूप से परमाणु बम बनाकर मानवता का सर्वनाश किया जा सकता है। इस प्रकार परमाणु ऊर्जा में सृष्टि, स्थिति और संहार—तीनों की सम्भावनाएं निहित हैं। इस प्रकार सृष्टिकर्ता ब्रह्मा, पालनकर्ता विष्णु और संहारकर्ता शिव तीनों एक ही परम तत्त्व के तीन रूप सिद्ध होते हैं। एक का दूसरे में रूप परिवर्तन भी हो जाता है जैसे वैज्ञानिक अपनी योग्यता से परमाणु ऊर्जा को संहारक के स्थान पर कल्याणकारक रूप में बदल सकता है। उसी प्रकार भक्त अपने श्रद्धा के चमत्कार से कृष्ण को राम रूप में और शिव को

विष्णु रूप में बदल सकता है। इस प्रकार आधुनिक परमाणु विज्ञान भारतीय दर्शन की मान्यताओं को अपने ढंग से पुनः प्रकाशित-प्रमाणित कर रहा है।

प्राचीन भारतीय ऋषियों ने कहा—सर्वं खल्विदं ब्रह्म' अथवा सर्वम शक्तिमय जगत् अथवा सर्वभूत विष्णुमय जगत् या सर्वम कृष्णमय जगत्। कबीर ने गाया—'ब्रह्मबीज का सकल पसारा।' तुलसी ने मानस में वंदना की—'सीयराम मय सब जग जानी, करउँ प्रनाम जोरि जुग पानी' सारे विश्व का मूल बीज जो एक परम तत्त्व है। जो सारी सृष्टि का सृष्टा है, नियामक है और सृष्टि में व्याप्त होने के साथ सृष्टिमय है, विश्वरूप है, और विश्वातीत भी है। उसे जानना ही जीवन की सर्वोच्च उपलब्धि है। आधुनिक विज्ञान भौतिकवाद का भवन खड़ा करके उसमें भौतिक प्रयोगशालाएं रचकर उनमें भौतिक पदार्थों का विश्लेषण, परीक्षण कर अन्त में इस निष्कर्ष पर पहुंचा है कि सृष्टि का अन्तिम सत्य भौतिक पदार्थ नहीं वरन् एक विश्वव्यापी ऊर्जा है जो भौतिक पदार्थों के रूप में साकार भी हो जाती है, उनमें व्याप्त भी है। उनका सारतत्त्व भी है और स्वयं अभौतिक स्वरूपवाली है। अतः Materialism के स्थान पर ऊर्जावाद Energism का सिद्धान्त घोषित किया जा रहा है। यह पराशक्ति महाशक्ति ब्रह्मशक्ति की ही वैधानिक स्वीकृति है। भारतीय दर्शन के समान विज्ञान भी मानता है कि सूर्य, चन्द्र, तारे, जीव-जन्तु, वनस्पति, समस्त धातु एवं अधातु तत्त्व परमाणुओं का ही समूह मात्र है और उनकी गतिशीलता से उत्पन्न विकिरण ऊर्जा, प्रकाश, ताप, चुम्बकत्व, विद्युत् ऊर्जा एवं गुरुत्वाकर्षण आदि शक्ति के भिन्न-भिन्न रूपों (ऊर्जाओं) द्वारा संचालित है। भारतीय दर्शन में इन शक्तियों की समष्टि को ब्रह्म कहा जाता है। जिस प्रकार एक ही मूल शक्ति जब भिन्न-भिन्न देश-काल निमित्त से होकर गुजरती है तो वह भिन्न-भिन्न नामों एवं रूपों में पहचानी जाती है। जैसे ताप ऊर्जा ज्वलंत होने पर प्रकाश ऊर्जा में बदल जाती है। घर्षण से पहले ताप ऊर्जा फिर चुम्बक फिर विद्युत् ऊर्जा से प्रकाश ऊर्जा इस तरह भिन्न-भिन्न ऊर्जाएं परस्पर एक-दूसरे में रूपान्तरित होती रहती हैं। यह उसी प्रकार है जैसे महालक्ष्मी, महासरस्वती, महादुर्गा में तत्त्वतः कोई भेद नहीं। एक ही ब्रह्म शक्ति वस्तु जगत् में देश, काल निमित्त से नाना रूपों में भासने लगती है। प्रत्येक भौतिक वस्तु देश-काल निमित्त से आबद्ध होती है। इसलिए हम उनकी अलग-अलग पहचान के लिए निमित्त के अनुसार नाम और देश-काल के अनुसार रूप मान लेते हैं। वास्तव में देश-काल निमित्त का मन से पृथक् कोई स्वतंत्र अस्तित्व नहीं है। ये मन के कल्पित भाव ही हैं। नाम तो स्पष्ट कल्पना ही है। देश-काल मोटे तौर पर कल्पित प्रतीत न होकर यथार्थ प्रतीत होते हैं। सृष्टि की प्रत्येक वस्तु इनसे परिच्छिन्न है। किन्तु यदि देश-काल अन्तिम सचाई होते तो इन पर कोई विजय नहीं पा सकता। अथवा इनके बंधन से, इनकी

सीमा से मुक्त कभी न हो सकता। किन्तु हम प्रतिदिन अनुभव करते हैं कि सुषुप्ति काल में देश-काल निमित्त सब लय हो जाते हैं। समाधि काल में देश-काल लुप्त हो जाते हैं। मन की एकाग्रता में, मन की तल्लीनता में मन को काव्यानन्द या संगीत रस से मिलने वाले सुख में भी देश-काल लुप्त हो जाते हैं। योगी की सारी साधना मन को जीतने की अर्थात् देश-काल पर विजय पाने की साधना है। इसलिए योगी अपनी चेतना द्वारा यत्र-तत्र सर्वत्र व्याप्त हो जाता है। और काल की सीमाओं को तोड़कर त्रिकालदर्शी बन जाता है। मोक्ष तो देश-काल पर विजय का नाम ही है। अत: इस विश्व की माया रूप अनेकता के पीछे जो एकता है वही महेश्वर है। प्रकृति के नानात्व के पीछे जो एकत्व छिपा हुआ है उसे ही परम पुरुष कहते हैं।

बाह्य जगत् का ज्ञान हमारे मन, इन्द्रिय और मस्तिष्क पर निर्भर करता है। अत: वह सापेक्ष है, निरपेक्ष नहीं। भारतीय मनीषियों ने घोषणा कर दी थी कि परमतत्त्व इन्द्रियातीत, मन-वाणी व बुद्धि से परे है।

विज्ञान ने खोजा है कि परमाणु की हलचल में आरम्भ में इलेक्ट्रॉन नामक सूक्ष्म कण ही प्रमुख रूप से उत्तरदायी होता है। जब यह सूक्ष्म कण ताप या घर्षण के प्रभाव से इधर-उधर भागने लगता है तो उस क्रिया को परमाणुओं का विद्युतीकरण कहते हैं। जब हम हथेलियां रगड़ते हैं तब पैदा होने वाली गर्मी इलेक्ट्रॉन कणों के भागने से पैदा होती है। जब हम नाइलॉन और सिल्क का कपड़ा उतारते हैं तो यह चटचट की आवाज इसी कारण होती है। पानी के उबालने से बुलबुलों का फटना, बादलों में बिजली का चमकना भी इसी कारण होता है। सूर्य के ताप से यही क्रिया विभिन्न वस्तुओं—वनस्पति, जीव-जन्तु और मनुष्यों के शरीर में—निरन्तर होती रहती है। इसके फलस्वरूप रीढ़ के तंतुओं में गतिशीलता उत्पन्न होती है। इस क्रिया द्वारा मनुष्य में रजोगुण वर्तमान रहता है और उसमें जीवन संचार होता रहता है। वेदान्त के शब्दों में हम क्रिया को आत्मा पर प्रकृति का बंधन कहते हैं। प्रकृति में रजोगुण के प्रभाव से ही जगत् का सारा क्रियाकलाप चलता है। तमोगुण में प्रकृति मृत एवं जड़ बनी रहती है। सत्त्वगुण में वह शांत एवं क्रियाहीन बन जाती है। संसार का संसरण रजोगुण से ही चलता है। प्रकृति की अनवरत प्रक्रिया को ही हम माया कहते हैं। इसी क्रिया द्वारा बीज वृक्ष का रूप धारण करता है और शुक्राणु तथा अण्डाणु मिलकर जीवों के शरीर की रचना करते हैं।

मायाधीश ईश्वर प्रकृति या माया के बंधन में नहीं—माया का एक अर्थ है सर्जना शक्ति। परमेश्वर इस सर्जना शक्ति माया द्वारा ही सृष्टि को रचता है। किन्तु वह मायापति होने के कारण माया से भ्रमित या बंदी नहीं होता। जादूगरी अपने जादू से स्वयं जादूगर को नहीं बांध सकती है। जीव भी इसी माया शक्ति के

सहारे संसार सृष्टि, भवन सृष्टि, कला सृष्टि, निर्माण सृष्टि आदि-आदि करता है। किन्तु यह माया से भ्रमित एवं बद्ध हो जाता है। जीव का माया से विवश हो जाने से वह प्रकृति के बंधन में पड़कर दु:ख पाता है। उसे माया से मुक्त करके महेश्वर से मिलाना यही दर्शन का प्रयोजन है।

विज्ञान अपने बाह्य भौतिक साधनों द्वारा प्रकृति की इस रजोगुणमयी (परमाणुओं के विद्युतीकरण की) क्रिया को कभी नहीं रोक पाएगा। क्योंकि विज्ञान किसी क्रिया को पदार्थ का स्वाभाविक गुण मानता है जिसके द्वारा समस्त जगत् की रचना होती है। इसकी तुलना में वेदान्त एवं योगशास्त्र का मत है कि मनुष्य आत्म शक्ति एवं योग साधना द्वारा प्रकृति की इस प्रक्रिया को रोककर उसके बंधन से मुक्त हो सकता है। योगी अपने योगबल से शरीर की क्रियाओं को अपने संकल्प से रोककर उन पर वश कर लेता है। वह अपने मन के नियंत्रण से संकल्प को भी रोककर निर्विकल्प समाधि में चला जाता है। वह भूत, भविष्यत्, वर्तमान के बंधन से भी मुक्त हो जाता है। इस प्रकार विज्ञान जहां समाप्त होता है दर्शन वहीं से प्रारम्भ होता है। Metaphysic का स्थान Physic के बाद ही है।

परमाणुओं में गति का मूल प्रेरक कौन है? विज्ञान मानता है कि विद्युत् चुम्बकीय शक्ति अथवा Radio Active waves का अविरल प्रवाह ही अन्तिम सत्य के रूप में खोजा जा सका है। यह विद्युत् तरंगें विद्युत् कणों से बनती हैं जिन्हें इलेक्ट्रॉन, प्रोटोन और न्यूट्रोन कहते हैं। इन तरंगों का प्रवाह सर्पगति से न चलकर मंडूक गति से चलता है। अब प्रश्न पैदा होता है कि मंडूक के समान विद्युत् तरंगों का प्रवाह निरन्तर न चलता हुआ कुछ छलांगें लगाकर रुक जाता है तथा पुन: अकस्मात् छलांगें भरने लगता है। भारतीय दर्शन पश्चिमी विज्ञान को ललकार कर पूछता है कि विद्युत् तरंगों का प्रवाह शुरू ही क्यों हुआ? उसको प्रारम्भिक गति किसने दी? फिर विच्छेद पड़ जाने पर वह पुन: गतिमान कैसे हुआ? विज्ञान स्वयं मानता है कि बिना गति देने वाले के गति हो ही नहीं सकती। भारतीय दर्शन में संसार का अर्थ गति है। **'संसरति इति संसारः'** जगत् का भी यही अर्थ है **'गच्छति इति जगत्'** चल रहा है वह ही जगत् है। इस जगत् की गति विच्छिन्न होकर फिर पुन: गति इस प्रश्न का उत्तर विज्ञान के पास नहीं है। दर्शन कहता है कि संसार किसी सृष्टा की संकल्प शक्ति से गतिमान हो रहा है। जड़ को कोई चेतन ही स्पन्दन दे सकता है। श्रोडिंजर ने भी इसी आधार पर कणिका तरंगों के पीछे एक चेतन सत्ता को माना है।

रसायन ने जो 105 मूल तत्त्व खोजे हैं उनकी क्रमबद्ध तालिका में किसी विश्वव्यापी गणितीय प्रतिभा का संकेत मिलता है। रूस के प्रसिद्ध रसायनशास्त्री डी.एस. मोडिलिएफ ने तत्त्वों की क्रमबद्ध तालिका तैयार की है। यदि मूल तत्त्व में

79 इलेक्ट्रॉन तथा 79 प्रोटोन हैं तो तालिका के अगले मूल तत्त्व में 80 इलेक्ट्रॉन और 80 प्रोटोन होंगे। इस प्रकार एक इलेक्ट्रॉन और प्रोटोन के विद्युत् कण घट-बढ़ जाने से मूल तत्त्व बदल जाता है। इससे प्रकट होता है कि मूल तत्त्वों की रचना भी किसी चेतन गणितज्ञ प्रतिभा का ही वरदान है। सौरमण्डल, सूर्य, चन्द्र, पृथ्वी तथा अन्य ग्रहों की गतियां इतनी नियमित एवं गणित शुद्ध हैं कि ज्योतिषशास्त्री सैकड़ों वर्ष पहले और पीछे का हिसाब लगाकर सूर्यग्रहण, चन्द्रग्रहण आदि की तिथियां एवं उनके छाया प्रभाव क्षेत्र की शुद्ध गणना कर लेते हैं। वैज्ञानिकों द्वारा निर्मित संसार की सभी घड़ियां एवं कालमापक यंत्र बिगड़ सकते हैं किन्तु ग्रह-नक्षत्रों की विश्वव्यापी घड़ी कभी धोखा नहीं देती। सारी सृष्टि के ग्रह-नक्षत्रों को लयबद्ध, क्रमबद्ध एवं व्यवस्थित, नियमित करने का काम किसी विश्वव्यापी चेतन शक्ति या बौद्धिक प्रतिभा शक्ति के बिना नहीं हो सकता।

जहां तक रसायन के खोजे हुए तत्त्वों का प्रश्न है कई ऐसे तत्त्व हैं जिन्हें मूल तत्त्व गिना जाता था। अब उन्हें मूल तत्त्व की सूची से निकाल दिया गया। रेडियम मूल तत्त्व था परन्तु देखा गया कि इसका परमाणु समय बीतने के साथ झड़ते-झड़ते (lad) शीशा और हीलियम गैस में परिवर्तित हो जाता है। उन दोनों को भी मूल तत्त्व माना जाता है। प्रश्न उठता है एक मूल तत्त्व दूसरे तत्त्व में कैसे परिवर्तित हो सकता है? यदि बदल जाता है तो मूल तत्त्व नहीं वह कुछ अन्य तत्त्वों का सम्मिश्रण है।

आइंस्टीन ने सिद्ध किया कि पदार्थ और ऊर्जा में कोई अन्तर नहीं है। किसी पदार्थ के कण विघटित होकर यदि प्रकाश की गति (एक लाख 86 हजार मील प्रति सेकंड) प्राप्त कर ले तो वह पदार्थ रेडियोधर्मी ऊर्जा में परिवर्तित हो जाता है। इसके विपरीत जब ऊर्जा केन्द्रीभूत होकर जम जाए तो उसे पदार्थ कहते हैं। आइंस्टीन के इस वैज्ञानिक सिद्धान्त को सांख्य दर्शन की भाषा में ऐसे कहा जा सकता है कि प्रकृति जब अव्यक्त रूप धारण करती है तो ऊर्जा कहते हैं और जब व्यक्त रूप धारण करती है तो उसे पदार्थ कहते हैं। गीता की शब्दावली में पदार्थ क्षर प्रकृति है और ऊर्जा अक्षर प्रकृति है।

मनुष्य के शरीर का निर्माण पदार्थ के परमाणुओं से ही हुआ है। विज्ञान बाहर के पदार्थ परमाणु में एक प्रचण्ड शक्ति को खोज सकता है जिसके अनुसार लगभग एक किलो कोयले को पूर्णतया परमाणु ऊर्जा में बदल देने पर उससे करोड़ों किलोवॉट बिजली पैदा हो सकती है। जिससे हजारों कल-कारखाने महिनों तक कार्य कर सकते हैं। इसी प्रकार दार्शनिक साधना द्वारा स्वयं मनुष्य की आन्तरिक शक्ति को लाखों गुणा बढ़ाकर असीम शक्ति में परिवर्तित किया जा सकता है। विज्ञान ने पदार्थ शक्ति का दैत्य खड़ा करके उसके सामने स्वयं मानव को

भयभीत, हताश, निराश, मरणापेक्षी, तुच्छ मुर्गे के समान खड़ा कर दिया है। विज्ञान के पदार्थ ऊर्जा के अनुरूप मानव के अभ्यन्तर विकास का कार्य वेदान्त या योगदर्शन कर सकता है। वैज्ञानिक बिजली पैदा कर कल-कारखाने चला सकता है। किन्तु मानव के अन्तर में बिजली की शक्ति पैदा नहीं कर सकता। विज्ञान की सबसे बड़ी कमजोरी है उसे जड़ प्रकृति पर निर्भर रहना पड़ेगा। भारतीय दर्शन का कहना है कि मनुष्य स्वयं ब्रह्म है। वह अपने भीतर की विराट् शक्ति को पहचान ले तो प्रचण्ड शक्तिशाली महाप्रकृति स्वयं उसके चरणों की दासी बन जाएगी ।

जीवनी शक्ति का मूलस्रोत जड़ अथवा चेतन—पदार्थ ऊर्जा से भी अधिक रहस्यमयी जीवनी शक्ति है। जिसका मूलस्रोत विज्ञान के लिए अभी तक रहस्य बना हुआ है। भौतिकवाद का कथन है कि जीवात्मा जैसी कोई सत्ता नहीं है। जड़ से ही चेतन का आविर्भाव हो जाता है। आधुनिक विज्ञान का कथन है Protoplasm (जीवद्रव्य) ही जीवन की इकाई है जिससे जीवन का आरम्भ होता है।

Protoplasm में निम्नलिखित द्रव्य पाये जाते हैं—

कार्बन 55 प्रतिशत

ऑक्सीजन 23 प्रतिशत

नाइट्रोजन 14 प्रतिशत

हाइड्रोजन 7 प्रतिशत

गंधक, पोटेशियम, सोडियम 1 प्रतिशत = कुल 100 प्रतिशत

Protoplasm के सबसे छोटे कण को Cell या जीवकोष कहा जाता है। केवल एक जीवकोष वाले प्राणी को अमीबा कहा जाता है।

मनुष्य के शरीर में असंख्य जीवकोष हैं। पेन्सिल बनाते समय यदि अचानक ब्लेड उंगली को लग जाए तो एक बूंद रक्त में 33 करोड़ जीवकोष होंगे। अमीबा इतना सूक्ष्म है कि बारीक सूई की नोक पर सैकड़ों अमीबा उठाये जा सकते हैं। अरबों वर्ष पहले पार्थिव तत्त्वों के सम्मिश्रण से अचानक अमीबा बन गया होगा। अमीबा में त्वचा के अतिरिक्त कोई इन्द्रिय नहीं है। वह उसीसे खाता, पीता, सांस लेता और चलता-फिरता है। विज्ञान का यह मत है कि इस प्रकार भौतिक पदार्थों से ही जीवन की उत्पत्ति हुई। यही Protoplasm धीरे-धीरे विकसित होते हुए लाखों-करोड़ों वर्षों में भिन्न जीवों की योनियों से बदलते हुए मनुष्य बन गया। चार्ल्स डार्विन ने अपने विकासवाद के सिद्धान्त में यह प्रतिपादित किया कि जीव जलचर में मछलियों, मेढकों, कछुओं और थलचर में पशुओं, बंदरों, लंगूरों आदि के रूप में विकसित होते-होते धीरे-धीरे मनुष्य के रूप में पूर्ण विकसित हो गया। चाहे डार्विन का क्रमिक विकासवाद भारतीय दर्शन को मान्य नहीं है

फिर भी डॉ. एनीबेसेन्ट और कुछ अन्य चिन्तकों ने भारत के अवतारों की क्रम श्रृंखला में डार्विन के विकासवाद की पूर्व कल्पना का बीज खोजने का प्रयास किया है। मत्स्यावतार, केवल जलचर जीव का प्रतीक है। कच्छप अवतार जलचर सह थलचर जीव कोटि का प्रतीक है। वराह (शूकर) पूर्ण थलचर जीव का प्रतीक है। नृसिंह नरपशु का प्रतीक है। वामन छोटे-बौने मनुष्य का, परशुराम रौद्ररूपी प्रचण्ड क्रोधवाले मनुष्य का, श्रीराम पूर्ण मर्यादित मनुष्य का, श्रीकृष्ण तत्त्वद्रष्टा रूढिमुक्त विचारक्रान्ति वाले महामानव का तथा कल्कि-अवतार भावी युग के आदर्श मानवों का प्रतीक है।

विज्ञान ने जीवन एवं जीवों पर बड़े रोचक परीक्षण किये हैं। गर्मी की ऋतु में मेढक आदि अनेक जलचर तालाबों के सूख जाने के कारण अदृश्य हो जाते हैं। कुछ तो मर जाते हैं और कुछ सूखे तालाबों एवं सूखी नदियों के तल में घुसकर खाना-पीना, श्वसन क्रिया त्याग कर मृतक की तरह निश्चेष्ट पड़े रहते हैं। मानो वे किसी योगी के समान भूमिगत समाधि लगाये पड़े हों। वर्षा का पहला छींटा पड़ते ही वे टर्राते हुए पुनः प्रकट हो जाते हैं। वे मृतक जैसे सूखे हुए कंकाल पुनः जीवित एवं चैतन्य हो उठते हैं। ऐसा प्रतीत होता है जैसे वे सूखे हुए धान के बीज के समान आठ-नौ मास तक पड़े रहते हैं और वर्षा का छींटा पड़ते ही तुरन्त अंकुरित होकर जीवन से लहलहाने लगते हैं। यदि मानव मेढक की अपेक्षा अधिक विकसित प्राणी है तो क्या यह आश्चर्य की बात नहीं कि जो जीवनी शक्ति की क्षमता एक छोटे मेढक में है वह अभी तक न डार्विन में विकसित हुई न उसके पूर्वजों में और न उसके वंशजों में। मनुष्य भोजन के बिना कुछ दिन जी सकता है, पानी के बिना कुछ घण्टे निर्वाह कर सकता है, किन्तु वायु के बिना उसका निर्वाह कुछ क्षणों में ही दूभर हो जाता है। विज्ञान जहां हार जाता है वहां आध्यात्मिक साधना द्वारा योगी लोग कई-कई मास की लम्बी समाधि ले लेते हैं। जिसमें वे भूख, प्यास, श्वसन क्रिया को वश में कर लेते हैं। अपनी नाड़ी गति एवं हृदय गति बंद कर बैठते हैं। वैज्ञानिक परीक्षण से वे मृत घोषित किये जाते हैं किन्तु वे जीवित रहते हैं और अन्य जीवों की अपेक्षा अधिक विकसित एवं महान् जीवन जीते हैं। मेढक की लम्बी समाधि के आधार पर भी भारतीय दर्शन में एक माण्डूक्योपनिषद् है।

रूस की विज्ञान-पण्डिता एक महिला ने हाइड्रा नामक एक सूक्ष्म प्राणी को खरल में पीस लिया। इस जीवनरहित मैटर को एक परखनली में भर लिया गया। परखनली में कुछ पोषक तत्त्व डाल दिये गये। कुछ समय बाद देखा गया कि हाइड्रा के पिसे-पिसाये अजीवित शरीर से जीवित हाइड्रा के चिह्न प्रकट होने लगे। वैज्ञानिक इससे यह सिद्ध करते हैं कि जीवन जड़ पदार्थों से बना है। किन्तु वास्तव में इससे यह सिद्ध हो रहा है कि जीवन बड़ा रहस्यमय तत्त्व है जिसके मूल बीजों

को खरल में पीस देने पर, धूप और वायु में सुखा देने पर भी नष्ट नहीं किया जा सकता। गीता में इसी को इंगित करते हुए कहा गया है कि वास्तविक जीवन (आत्मा) को शस्त्र काट नहीं सकते। आग जला नहीं सकती। पानी गीला नहीं कर सकता और वायु सुखा नहीं सकती।

जड़ पदार्थ से जीवन निर्माण के कई प्रयोग किये जाते हैं। भौतिकवादी कहते हैं गंदे पानी में अपने आप अमीबा हो जाते हैं। गोबर में अपने आप कीड़े हो जाते हैं। किन्तु वास्तविकता यह है कि गंदे पानी में या गोबर में पहले से ही कुछ जीव-जीवाणु, कीटाणु वर्तमान रहते हैं। कुछ जीवाणु बैक्टीरिया आदि के रूप में वायुमण्डल में भी रहते हैं। इसलिए यह कहना तर्कसम्मत नहीं है कि गंदे पानी या गोबर में से अपने आप जीव पैदा हो जाते हैं। यदि पानी और गोबर को विधिपूर्वक कीटाणु मुक्त कर दिया जाए और उसे वायु रहित स्थान Vacuum में या शीतल यंत्र (फ्रीज) में रख दिया जाए तो उसमें कोई जीव पैदा नहीं होंगे। हम प्रतिदिन देखते हैं कि बाहर के वायुमण्डल में जो खाद्य वस्तु गल-सड़ जाती है वह बर्फ में या शीतल यंत्र में विकृत नहीं होती। इसी प्रकार अचार एवं मुरब्बे तेल में या खाण्ड के पाक में रखने पर उसमें भी कीड़े नहीं पड़ते। जो शर्बत बाहर के साधारण वायुमण्डल में कुछ घंटों में बदबू मारने लगता है उसको कीटाणुनाशक औषधि डालकर बोतलों में बंद करके कई मास अथवा वर्ष रखा जा सकता है। इससे सिद्ध होता है कि जीव जीव से ही जीवन प्राप्त करता है। चाहे वह जीव उसमें पहले से सुप्त पड़ा हो या वायुमण्डल से आ जाए या अन्य वस्तु के स्पर्श से। जड़, अजीव में से जीव पैदा होने का कोई प्रमाण नहीं मिलता।

वैज्ञानिकों ने Protoplasm (जीवद्रव्य) का विश्लेषण तो कर लिया है। किन्तु, कार्बन, ऑक्सीजन, नाइट्रोजन आदि के सम्मिश्रण से वे आज तक कृत्रिम रूप से बना नहीं सके। वैज्ञानिक केवल विश्लेषण कर सकता है। जीवन तत्व को उत्पन्न नहीं कर सकता। मजदूर केवल भवन को गिरा सकता है, उसका निर्माण तो इंजीनियर ही कर सकता है। गीता के श्लोकों को स्वर और व्यंजनों में बांट देने से गीता का ज्ञान प्राप्त नहीं हो सकता। कालिदास के काव्य को छपाई के काले अक्षरों में क ख आदि में जोड़ने वाला या तोड़ने वाला छापेखाने का श्रमिक कालिदास के काव्य का आनन्द नहीं ले सकता। इसी प्रकार हाइड्रोजन, ऑक्सीजन के विश्लेषण से जीवन द्रव्य का रासायनिक रूप समझा जा सकता है। किन्तु, जीवन का रहस्य नहीं पाया जा सकता। नवीनतम खोजों में Protoplasm को वैज्ञानिक प्रयोगशाला में उत्पन्न करने की चेष्टा चल रही है। कहा जाता है कि रूस में थोड़ी सफलता भी मिली है। किन्तु, अभी तक उसे विश्व के वैज्ञानिकों की मान्यता नहीं मिली है। यदि जड़ रसायनों से जीव द्रव्य बनता तो

बिना जीवित मनुष्य के हाथ लगाये, बिना उनकी उचित मात्रा तौलकर मिलाये, बिना उसमें किसी जीवित के सहयोग के अपने आप जीवद्रव्य बनता। किन्तु ऐसा असम्भव है। जीवित वैज्ञानिक अपनी चेतना के द्वारा जीवद्रव्य का विश्लेषण करता है और अनेक वर्षों के लगातार प्रयोग के बाद उन रसायनों को उचित मात्रा में नाप-तौलकर, मिलाकर एक कृत्रिम जीवन बनाने की चेष्टा करता है। क्योंकि वायुमण्डल में भी अनेक जीवाणु तैरते रहते हैं। इसलिए उन्हीं में से कोई जीवन का बीज यदि हमारे रासायनिक घोल को छू जाए तो जीवद्रव्य के लक्षण प्रतीत होने लगेंगे। किन्तु यदि न वायुमण्डल के किसी जीव का सम्पर्क होने दिया जाए और न जीवित वैज्ञानिक अपनी चेतन बुद्धि का सहयोग दे तो जड़ रसायनों के अपने आप मिश्रण से जीवद्रव्य का निर्माण असम्भव ही होगा। इसी प्रकार परखनली में (Test tube babies) बच्चे का प्रयोग आधुनिक विज्ञान का चमत्कार माना जाता है। किन्तु, वीर्य किसी जीवित पुरुष का ही बीज है और रज भी किसी जीवित स्त्री का अंश है। उनका मिश्रण प्राकृतिक रूप में गर्भाशय में हो अथवा कृत्रिम गर्भाशय (परखनली) में हो इसका कोई विशेष अन्तर नहीं पड़ता। अन्तर केवल यही पड़ता है कि प्राकृतिक ढंग से प्रसव होने के स्थान पर बिना प्रसवपीड़ा के प्रयोगशाला में एक कृत्रिम, दुर्बल, अविकसित, अभागा अनाथ बच्चा जन्म लेता है जो कुछ मास के अन्दर ही मर जाता है।

अब तक विज्ञान जड़ से चेतना उत्पन्न नहीं कर सका। जहां भी जीवन दिखाई देता है वह पहले किसी विद्यमान जीवन से आया है। हाइड्रा को पीस देने पर भी उसका सूक्ष्म जीवाणु बना रहा। इसलिए रसायनों के प्रयोग से उसका पिसा हुआ जीवकोष पुनः सक्रिय होकर कार्य करने लगा। जिस महिला वैज्ञानिक ने हाइड्रा को पीसकर यह प्रयोग किया यदि स्वयं उसे ही पीसकर यह प्रयोग किया जाए तो वह कभी पुनर्जीवित नहीं हो सकेगी। जिस परिस्थिति में मेढक पुनर्जीवित हो जाता है उसमें मेढकों पर प्रयोग करने वाला वैज्ञानिक एक क्षण भी जी नहीं सकेगा। मनुष्य के मृत हो जाने पर कई बार निर्धन वनवासी अग्नि संस्कार के लिए उचित आर्थिक व्यवस्था होने तक कुछ मास के लिए मृतक को धरती में गाड़ देते हैं। उसके बाद में अग्नि संस्कार के लिए जब निकाला जाता है तो यह देखकर विस्मय होता है कि उसके नख एवं बाल बढ़ गये हैं। उसका कारण यह है कि मनुष्य के शरीर के मर जाने पर भी उसके शरीर के कोषों में बहुत निम्न स्तर का जीवन कुछ समय तक बना रहता है जिससे नख एवं बाल बढ़ सकते हैं। किन्तु हृदय एवं मस्तिष्क में प्राण संचार एवं रक्त संचार पुनः नहीं हो सकते। प्रकृति में जो बहुत छोटे स्तर के जीव हैं virus नामक रोगाणु (बैक्टीरिया, अमीबा आदि।) वे मनुष्य की अपेक्षा अधिक कष्टसहिष्णु, अधिक गर्मी-सर्दी सहने योग्य तथा

अधिक तीव्र गति से प्रजनन करने वाले होते हैं। इसी प्रकार हाइड्रा और मेढक, मच्छर और मक्खी आदि भी निम्न स्तर के जीव हैं। जो अधिक बड़े संकटों में भी जीवन को बनाए रखने की चेष्टा करते हैं। उनकी तुलना में कष्टसहिष्णुता में मानव का विकास न मानकर ह्रास ही मानना पड़ेगा।

डार्विन के विकासवाद से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि मानव की रचना परमेश्वर द्वारा विशेष रूप से नहीं की गई। अपितु सरल प्रकारों के प्राणियों से ही उसका क्रमबद्ध विकास हुआ है। डार्विन विकास की प्रक्रिया के लिए ईश्वर को आवश्यक नहीं मानता। उसके मत में विकास चार नियमों के अनुसार चल रहा है। जीवन संग्राम, योग्यतम की रक्षा, शारीरिक परिवर्तन और आनुवंशिकता। किन्तु सृष्टि में सबसे पहला जीव का बीज कहां से आया। इस विषय में वह और कोई भौतिकवादी समाधान न मिलने पर विवश होकर मान लेता है कि किसी तरह ईश्वर ने ही निर्जीव जड़ तत्त्वों में प्राण देकर आदिम जीवकोषों को उत्पन्न किया और जब जीवित कोष बन गये तब से अपने आप प्राकृतिक नियमों द्वारा विकसित होते रहे हैं। इस प्रकार डार्विन ने जीवन लीला के उद्घाटन के लिए ईश्वर को मान लिया। किन्तु, जीवन लीला के पूरे नाटक से ईश्वर को बहिष्कृत कर दिया।

वर्तमान युग में जीन पर विशेष शोधकार्य हो रहा है। डॉ. हरगोविन्द खुराना को इसी के शोध पर नोबल पुरस्कार मिला है। जीन एक प्रकार की कणिका है और इसी के प्रभाव से गर्भ में बढ़ते हुए भ्रूण की विशेषताएं निर्धारित होती हैं। यही कारण है कि जिस प्रकार के जीन माता-पिता में पाये जाते हैं उसी प्रकार के जीन संतानों में भी आ जाते हैं। वंश परम्परा का प्रभाव जीव विज्ञान की शब्दावली में जीन का प्रभाव ही है। वास्तव में शरीर की रचना तो जीन नामक जीवन-कणिका से वंश परम्परा के क्रम से चलती रहती है। इसलिए मंगोल जाति के बच्चे मंगोल मुखाकृति वाले, नीग्रो जाति के लोग नीग्रो जाति की मुखाकृति वाले और आर्य जाति के लोग आर्य मुखाकृति वाले होते हैं। इसके अतिरिक्त बच्चे अपने माता-पिता से कुछ मानसिक संस्कार एवं श्रद्धाएं भी वंश परम्परा से प्राप्त करते हैं। जिसकी उचित व्याख्या जीन से नहीं हो सकती।

यदि किसी कारण से एक जीन से कुछ परमाणु टूटकर निकल जाएं तो उस स्थिति में कुछ जीवित तंत्र की अभिवृद्धि में परिवर्तन हो जाता है। जीन मुख्य रूप से न्यूक्लयो प्रोटीन (अमीनो अम्ल) से बने होते हैं। प्रत्येक जीन के साथ एक विशेष प्रकार के एन्जाइम का सम्पर्क होता है। एन्जाइम जैव उत्प्रेरक है। जिसकी सहायता से शरीर के अन्दर रासायनिक पदार्थों से प्रतिक्रियाएं होती है। उदाहरण के तौर पर दही में एन्जाइम बहुत अधिक होते हैं जो पाचन क्रिया में बड़े सहायक होते हैं। एक जीन में लगभग 2 हजार चरणों की सीढ़ी बनी होती है। मानव शरीर के

एक क्रोमोसोम में लगभग 6 लाख 10 हजार ऐसे चरणों की सीढ़ी होती है। माता और पिता के कौन-कौन से जीन बच्चे के निर्माण में कितना-कितना सहयोग करेंगे यह सब अनिश्चित है। जीन उत्परिवर्तन के माध्यम से नवीन प्रकार के प्राणियों की उत्पत्ति होती है। डा. खुराना के शोध से सम्भवतः इच्छानुसार माता और पिता के जीन मिलाकर इच्छित प्रकार की संतान उत्पन्न की जा सकेगी। ऐसी सम्भावनाएं वैज्ञानिक प्रस्तुत करते हैं। इसमें मनुष्य को कितनी सफलता मिलती है यह तो भविष्य ही बताएगा। यदि डा. खुराना का जीन किसी वैज्ञानिक विधि से उसकी संतान में जा सके तो सम्भवतः उनका पुत्र भी उन जैसा Genius बन जाए। किन्तु भारतीय दर्शन मानता है कि सन्तान में जो गुण सम्पदा है उसमें माता-पिता की नस्ल, उनके विचार-संस्कार तथा जीव के अपने पूर्व जन्मों के कर्म संस्कार सब मिलकर संयुक्त प्रभाव डालते हैं। जुड़वा बच्चों में माता-पिता के जीन समान होते हैं। जन्म का काल लगभग समान होता है। शरीर की रचना एवं आकृति आदि भी समान होती है। उनका आयुष्य भी लगभग समान होता है, जीवन की रुचियां भी लगभग समान होती है। किन्तु, उनकी कर्म संस्कार परम्परा भिन्न होने के कारण दोनों की नैतिक, बौद्धिक, आध्यात्मिक प्रवृत्तियां भिन्न होती हैं। इसके लिए जीव विज्ञान के पास कोई उत्तर नहीं है। फिर जीन की नवीनतम खोजों से भी जड़ से जीवन की उत्पत्ति कहीं प्रमाणित नहीं हो रही है। जीवित माता-पिता के जीन उनकी संतान में जाते हैं। यही सिद्ध हो रहा है।

जीवित तत्त्व भौतिक तत्त्वों के समान ही क्रिया करते हैं। किन्तु उनकी विशेषता यह है कि ये पर्यावरण से कुछ भौतिक तत्त्वों को अपने अन्दर शामिल करने की क्षमता रखते हैं और उन भौतिक तत्त्वों को अपने शरीर के लिए उपयोगी जीवित सत्ताओं के रूप में रूपान्तरित कर देते हैं। रूपान्तरित होने पर उनमें कुछ नूतन गुण-धर्मों की भी उत्पत्ति होती है। उदाहरण के रूप में एक पौधा या वृक्ष मिट्टी, जल, नाइट्रोजन आदि भौतिक तत्त्वों को अपने जीवन के लिए उपयोगी तत्त्वों में रूपान्तरित कर लेता है। कई कीटाणु मिट्टी में ही पैदा होते हैं और मिट्टी खाकर जीते रहते हैं। मनुष्य जड़ खनिज पदार्थों को तथा जीवित खाद्य पदार्थों को पचाकर अपने जीवन के लिए उपयोगी बना लेता है। जीवित तंतु में भौतिक तंतुओं के साथ मनोभौतिक सत्ताएं भी विद्यमान रहती हैं। जीवित तंत्रों का निकटतम लक्ष्य अपनी तथा अपनी प्रसूतियों की अधिकाधिक अतिजीविता है। वे परिवर्तनशील पर्यावरण के साथ अनुकूलन के माध्यम से अतिजीवित रहने में समर्थ होते हैं। ये अतिजीवित रहने पर अन्य ऊंचे स्तरों के मूल्यों की रचना कर सकते हैं। विकास के क्रम में ऊंचे उठते जाने से प्रसूतियों की संख्या कम होती जाती है। कीड़े-मकोड़ों की प्रसूतियां अधिक संख्या में होती है और उनके विनष्ट

होने की सम्भावना भी अधिक होती है। इसकी तुलना में मनुष्य की प्रसूतियां कम होती है। किन्तु, विनाश होने की सम्भावनाएं भी उनकी अपेक्षाकृत कम हो जाती है। जीवन का स्तर जड़ पदार्थ से ऊंचा और पशु जीवन से नीचा है। पेड़-पौधे में जीवन तो भारतीय मनीषी सदा से मानते आये हैं जिसे आधुनिक काल में डॉ. जगदीशचन्द्र बसु ने पुनः वैज्ञानिक ढंग से सिद्ध किया। किन्तु पेड़-पौधे में मानसिक चेतना है या नहीं इस प्रश्न पर विज्ञान मौन है तथा प्रायः यही मान लिया जाता है कि उनमें मानसिक चेतना नहीं है। किन्तु भारतीय दर्शन मानता है कि उनके भीतर चेतना घनी सुषुप्ति के स्तर पर रहती है। बिना चेतना के पौधा कैसे जानेगा कि उसके लिए क्या खाद्य है और क्या अखाद्य है और खाद्य को प्राप्त करने के लिए कैसा प्रयास करना है?

सांख्य दर्शन विज्ञान की दृष्टि में—

भारतीय दर्शन में षड्दर्शनों की शृंखला में सांख्य दर्शन विज्ञान की दृष्टि से सबसे महत्त्वपूर्ण है। पंडित भगवत दत्त Reaserch Scholar ने अंग्रेजी के Science शब्द की उत्पत्ति संस्कृत के सांख्य शब्द से बताई है। सांख्य शब्द ही अपभ्रंश होकर सास्य और साइंस बन गया। प्रसिद्ध अमरीकी दार्शनिक विल डुरेन्ट का कथन है कि 'दर्शनशास्त्र विज्ञान का चरम बिन्दु है। इस दृष्टि से देखा जाए तो विज्ञान दर्शनशास्त्र का प्रारम्भिक बिन्दु या मूल है। सांख्य दर्शन का महाभारत में स्पष्ट और महत्त्वपूर्ण उल्लेख मिलता है। गीता में भगवान् कृष्ण सांख्य का बहुत महत्त्वपूर्ण उल्लेख करते हैं और सांख्य के रचयिता महर्षि कपिल को स्वयं अपनी विभूति बताते हैं। **'सिद्धानां कपिलो मुनिः'**। कपिल मुनि ब्रह्मा के मानसपुत्र माने जाते हैं। कपिलजी महाभारत एवं पुराणों में देवहूति और कर्दम ऋषि के पुत्र बताये गये हैं। श्री गुरुदत्त के मत में त्रेतायुग को प्रारम्भ हुए 21,65,076 वर्ष हो चुके हैं। लगभग इतने ही वर्ष महर्षि कपिल को हुए माने जाते हैं। अतः कपिल मुनि को संसार का प्रथम दार्शनिक माना जाता है। क्योंकि उनका दर्शन विज्ञानसम्मत है। अतः वे संसार के प्रथम वैज्ञानिक भी माने जाते हैं।

वेदों में भी सांख्य दर्शन के बीज वर्तमान है। सांख्य के विषय को (संक्षेप में) निम्नलिखित बिन्दुओं में कहा जा सकता है—

(1) जगत् की रचना से पूर्व क्या था और कैसे रचना आरम्भ हुई?

(2) रचना आरम्भ करने वाला कौन था?

(3) रचना का क्रम कैसा था?

(4) जगत् में प्राणी की रचना सर्वोत्कृष्ट कार्य है।

(5) प्राणी क्या है?

(6) जड़ से प्राणी भिन्न है। भिन्नता चेतना की है। चेतना स्वयं जड़ नहीं है। किन्तु वह मन-बुद्धि और इन्द्रिय से प्रकट होती है। जो प्रकृति के ही रूप हैं। प्रकृति बिना चेतन पुरुष स्वत: कार्य नहीं कर सकती।

(7) मन, बुद्धि, इन्द्रिय शरीर के अतिरिक्त प्राणी में जीवात्मा है। जो शरीर की क्रियाओं पर नियंत्रण रखता है तथा शरीर के कर्मों का उत्तरदायी है।

(8) धर्म युक्त कर्म का फल सुख और अधर्म युक्त कर्म का फल दु:ख होता है।

(9) जीवात्मा संसार में व्याप्त एक शक्ति का प्रयोग करता है। जब यह शक्ति इन्द्रियों में कार्य करती है तो प्राण कहलाती है।

(10) जीवात्मा नित्य है। वह विनाश को प्राप्त नहीं होता। इसकी मुक्ति दो प्रकार से होती है—

(क.) साधना करके विवेक प्राप्त होने पर।

(ख.) प्रलय में जब पूर्ण जगत् परमाणु भूत हो जाता है तब यह निष्क्रिय हो जाता है।

(11) एक कोषाणु वाले जीव (अमीबा) से लेकर सर्वोत्कृष्ट प्राणी मनुष्य तक नीचे से ऊपर जाने को उत्क्रमण कहते हैं और ऊंची योनि से नीचे की योनि में आने को अवक्रमण कहते हैं। ये कर्मफलों के कारण ही होता है। केवल अंधप्रकृति के धक्केमात्र से नहीं। जीवात्मा सूक्ष्म शरीर में लिपटा हुआ एक योनि से दूसरी योनि में कर्मफल की डोरी से बंधा हुआ जाता है। ब्रह्मलोक में जीवात्मा सूक्ष्म शरीर के बिना जाता है और महाप्रलय में भी वह सूक्ष्म शरीर से रहित हो जाता है।

(12) मुक्तावस्था विवेक से प्राप्त होती है। विवेक प्रकृति-पुरुष के भेद का यथार्थ ज्ञान है। मुक्ति में त्रिविध दु:खों की अत्यन्त निवृत्ति हो जाती है और परमात्मा की प्राप्ति होती है।

नासदीय सूक्त—

वेद के नासदीय सूक्त में उस अवस्था का चित्र बड़ा कवित्वमय एवं विस्मयकारी चित्रित किया गया है—

प्राण और आकाश तब उसी अनन्त पुरुष में सुप्त भाव में थे किन्तु किसी प्रकार का प्रकट प्रपंच नहीं था। इस स्पन्दन रहित अप्रकाशित अवस्था को अव्यक्त कहते हैं। कपिल मुनि ने उस अवस्था को प्रकृति की साम्यावस्था कहा है। अव्यक्त से व्यक्त की प्रक्रिया बड़ी सूक्ष्म, वैज्ञानिक प्रक्रिया है। स्वामी विवेकानन्द के शब्दों में प्राण के बार-बार आघात के द्वारा आकाश से वायु और उसके द्वारा ही वाष्पीय

भूत की उत्पत्ति होती है। स्पन्दन के क्रमशः द्रुत से द्रुततर होने पर उत्ताप अथवा तेज की उत्पत्ति होती है। क्रमशः उत्ताप कम होकर शीतल होता रहता है तब यह वाष्पीय पदार्थ तरल भाव ग्रहण करता है। उसे आपः (जल) कहते हैं। अन्त में वह कठिन आकार प्राप्त करता है उसका नाम पृथ्वी है... ठीक इसके विपरीत क्रम में सब अव्यक्तावस्था को प्राप्त होते हैं। सब कठिन वस्तुएं तरल आकार में परिणत होती हैं। तरलावस्था लुप्त होकर केवल उत्तापरोधी के रूप में परिणत होती है। वह फिर धीरे-धीरे वाष्पीय भाव धारण करती है। फिर परमाणु समूह विश्लिष्ट होना आरम्भ करते हैं और सबसे अन्त में सब शक्तियों की सामंजस्य अवस्था उपस्थित होती है। तब स्पन्दन बंद होता है—इसी प्रकार से कल्पान्त होता है।

सृष्टिकर्ता कौन?—जड़वादी मानते हैं कि सृष्टि बिना किसी सृष्टिकर्ता के अपने आप उत्पन्न हुई है। यहां कोई सृष्टिकर्ता नहीं है। सांख्य दर्शन के विषय में भी कुछ विचारकों ने यह भ्रान्ति फैलाई है कि चाहे यह दर्शन वेदमूलक है। किन्तु, प्रकृति के गुणों से ही सृष्टि की रचना मानता है और किसी सृष्टिकर्ता की आवश्यकता नहीं मानता। सांख्य तो दो प्रधान तत्त्व मानता है—प्रकृति और पुरुष। प्रकृति पांच तत्त्वों और तीन गुणों के रूप में अपना खेल तभी कर सकती है जब उसका पुरुष से संयोग होता है। पुरुष जीवात्मा है जो अनेक है। अतः सृष्टिकर्ता किसी एक पुरुष को माना जाए। इसी पर सांख्य के भाष्यकर्ताओं में मतभेद है। वास्तव में प्रारम्भ में सांख्य दर्शन वेदमूलक होने के कारण सृष्टिकर्ता ईश्वर को मानता था। किन्तु, बाद के कुछ भाष्यकारों ने सृष्टिकर्ता ईश्वर की आवश्यकता नहीं मानी। जैन दर्शन भी चाहे मुक्तावस्था में आत्मा के परमात्मा बन जाने के आदर्श को स्वीकार करता है। किन्तु सृष्टिकर्ता ईश्वर को आवश्यक नहीं मानता। अर्थात् ईश्वर हमारा प्रारम्भिक मूल न होकर केवल अन्तिम लक्ष्य है। सांख्य दर्शन के तीसरे अध्याय के 55वें सूत्र में स्पष्ट कहा गया है कि—

'अकार्यत्वेऽपि तद्योगः पारवश्यात्।'

अर्थात् यह जगत् ईश्वर का कार्य परिणाम न होने पर भी परवश होने के कारण ईश्वर से सम्बद्ध है। चराचर जगत् परवश है। ईश्वर इसका कर्मफलदाता एवं नियामक है—

स हि सर्ववित् सर्वकर्ता।।56।।

अर्थात् वह ईश्वर सर्वान्तर्यामी और सबका कर्ता है।

ईदृशेश्वर सिद्धिः सिद्धा।।57।।

इस प्रकार ईश्वर की सिद्धि इस दर्शन में दृढ़ता से की गई है। तात्पर्य यह है कि सांख्य ईश्वर को जगत् का उपादान कारण तो मानता ही नहीं निमित्त कारण

मानने में भी लगभग मौन है। किन्तु ईश्वर को जगत् का नियंता, अधिष्ठाता एवं जीवों की मुक्ति का लक्ष्य अवश्य मानता है। इसी भाव को गीता में भगवान् ने इन शब्दों में कहा है—

मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम्।
हेतुनानेन कौन्तेय जगद्विपरिवर्तते।। 9/10

अर्थात् मेरी अध्यक्षता में प्रकृति चराचर जगत् को रचती है। इसी कारण प्रकृति का बनना-बिगड़ना होता रहता है।

परमेश्वर की अध्यक्षता में प्रकृति जगत् को रचती है। इसका अर्थ यह भी हो सकता है कि परमेश्वर सृष्टि के नियामक शासक हैं। उसे सांख्य दर्शन मानता है।

दूसरी व्याख्या यह हो सकती है कि परमेश्वर प्रकृति के कामों की उचित देखरेख एवं परीक्षा करने वाले निरीक्षक के समान हैं। अध्यक्ष का अर्थ है अधि+अक्ष अर्थात् जो अपने से नीचे वालों पर नजर रखे। जैसा आजकल Observer का काम होता है। अध्यक्ष का अधिक व्यापक भाव स्वामी के अर्थ में भी है। जो अपने आदेश से अथवा अपने संकल्प मात्र से प्रकृति रूपी चेरी को आदेश देकर चराचर जगत् की सृष्टि कराता है। न्याय-वैशेषिक-सांख्य, योग, मीमांसा सभी ने प्रकृति को जगत् का उपादान कारण माना है और ईश्वर को निमित्त कारण। इनमें से सांख्य की व्याख्या में मतभेद है अन्यों में नहीं। सांख्य ईश्वर को सृष्टि का नियामक तो मानता ही है। वेदान्त परम पुरुष को ही सृष्टि का निमित्त कारण, उपादान कारण और नियामक कारण सभी कुछ मानता है। वैज्ञानिक दृष्टिकोण से सांख्य का मत अधिक सरल एवं सहज बुद्धिगम्य प्रतीत होता है।

रचना क्रम

सत्त्वरजस्तमसां साम्यावस्था प्रकृतिः प्रकृतेर्महान्
महत्तोऽहंकारोऽहंकारात् पञ्चतन्मात्राण्युभयमिनिन्द्रियं
तन्मात्रेभ्यः स्थूलभूतानि पुरुष इति पञ्चविंशतिर्गणः। 1/61

अर्थात् सत्त्व, रजस, तमस की साम्यावस्था प्रकृति है। प्रकृति से महत्, महत् से अहंकार, अहंकार से पंच तन्मात्र और दोनों प्रकार की इन्द्रियों और तन्मात्राओं से स्थूल महाभूत बनते हैं। इनके साथ पुरुष है। यह पचीस (का) गण है।

प्रकृति के गुण—प्रकृति में तीन गुण हैं। सत्त्व, रज और तम। वैशेषिक ने शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध को द्रव्य में रहने वाले गुण कहा है। किन्तु सांख्य ने द्रव्य में रहने वाले इन गुणों को पांच तत्त्वों की पंच तन्मात्रायें कहा है। सांख्य ने गुण सत्त्व, रज, तम को माना है जो वस्तुतः द्रव्यरूप है। गुण का शाब्दिक अर्थ

रस्सी, डोरी, बांधने वाला है। ये तीनों गुण पुरुष या जीवात्मा को बांधने वाले हैं। जो मनुष्य गुणातीत या निस्त्रैगुण्य हो जाता है वह मुक्त हो जाता है।

वाचस्पति मिश्र ने गुण का अर्थ किया है अंग अथवा सहायक। सत्त्व, रज, तम ये प्रकृति के स्वरूप को निस्पंद करने वाला अंग है। व्यवहार की दृष्टि से तीन गुण प्रकृति के अंग है और मोक्ष साधना की दृष्टि से यही जीवात्मा के बंधन का कारण है। उदाहरणस्वरूप—यदि उद्यान में मीठा आम गिरता हुआ तीन व्यक्ति देखते हैं—फल प्राप्त करने वाला आनन्दित होता है, फल न पाने वाला दु:खी होता है और दोनों की गतिविधि को देखने वाला उदासीन रहता है। जगत् के प्रत्येक पदार्थ में केवल तीन गुण की सत्ता वर्तमान रहती है। सत्त्वगुण हलका, प्रकाशक एवं आनन्ददायक होता है। जैसे, अग्नि ज्वाला। उपासना के बाद साधक का चित्त बड़ा हलका होता है। उसे आनन्द प्राप्त होता है। हर्ष, संतोष, सुख आदि मधुरभाव सत्त्वगुण के कारण होते हैं। रजोगुण चंचलता का प्रतीक, क्रिया का प्रवर्तक है। इसीसे निष्क्रिय सत्त्व तथा तम में क्रिया का संचार होता है। यह सुख के प्रलोभन में जीव को नचाकर अन्त में दु:ख में डाल देता है। जगत् की सारी भाग-दौड़ तथा विश्व की सारी हलचल इसी कारण से है।

तमोगुण—यह भारी, रोकने वाला, निद्रा, आलस्य, प्रमाद, मोह, अज्ञान आदि का कारण माना जाता है।

इन तीनों गुणों का शुद्ध रूप और मलिन रूप भी होता है। इन तीनों गुणों का आपस में विरोध भी है और परस्पर में सम्बन्ध भी है। इन तीनों के मेल से ही प्रकृति कार्य करती है तथा पुरुष का अर्थ सिद्ध करती है। तीनों मिलकर एक साथ रहते हैं। कभी प्रथम गुण बाकी दो गुणों को दबाकर प्रबल हो जाता है। कभी दूसरा, कभी तीसरा। दूसरे गुणों को दबाने की वृत्ति का नाम अभिभववृत्ति है। इन गुणों में परस्पर आश्रयवृत्ति भी है। उदाहरण—दीपक में तेल, बाती और आग परस्पर विरोधी होते हुए भी एक-दूसरे के सहायक होकर ही दीपक को दीपक बनाते हैं। इनमें से एक के भी नहीं होने से दीपक का दीपकत्व संकट में पड़ जाता है। ब्राह्ममुहूर्त में सत्त्वगुण बाकी दोनों गुणों को दबाकर प्रबल हो जाता है। दिन में रजोगुण प्रबल हो जाता है और रात्रि में तमोगुण।

युद्ध रजोगुण का कार्य है। किन्तु उसे सूझ-बूझ रूपी सत्त्वगुण का आश्रय लेना पड़ता है और रात्रिकाल में शत्रु को असावधान रखने वाले तमोगुण का समय आक्रमण के लिए चुनना पड़ता है। कोई भी गति तभी हो सकती है जब उसकी भूमि स्थिर हो यानी बहुत चिकनी धरती पर, फिसलने वाली भूमि पर गति कठिन हो जाती है। पतले कीचड़ वाले स्थान पर बस का चक्का फंसकर घूमता रहता है।

किन्तु, बस आगे नहीं बढ़ती है। क्योंकि पहिये के नीचे की भूमि स्थिर नहीं है। तमोगुण की धारणाशक्ति (जड़ता) gnertia के बिना कोई गति सम्भव ही नहीं है। न्यूटन के गति के तीसरे नियम के अनुसार कोई भी वस्तु जितने वेग से अपने आधार को पीछे की ओर ढकेलती है। उतने ही वेग से वह स्वयं आगे बढ़ जाती है। हम पांवों से धरती को पीछे धकेलते हैं, तब हम स्वयं आगे चलते जाते हैं। हम चप्पू से जल को पीछे धकेलते हैं तब नौका आगे बढ़ जाती है। कोई पक्षी या हैलिकौप्टर जितने वेग से वायु को नीचे धकेलता है उतने वेग से स्वयं ऊपर उठता जाता है। विमान जितने वेग से वायु को पीछे की ओर फेंकता जाता है उतने वेग से आगे बढ़ता जाता है। रॉकेट गर्म गैस को अपने पृष्ठ-छेद से जितने वेग से नीचे फेंकता है। वह स्वयं उतने ही वेग से स्वयं ऊपर उड़ जाता है। अतः तमोगुण के आश्रय के बिना रजोगुण काम नहीं कर सकता। गति के दिशा-निर्धारण के लिए सत्त्वरूपी ज्ञान चाहिए।

ये तीनों गुण सततपरिणामी होते हैं। प्रतिक्षण इनमें कुछ परिवर्तन होता रहता है। प्रत्येक व्यक्ति के मन में इन तीन गुणों की क्रिया-प्रतिक्रिया से संकल्प-विकल्प उठते रहते हैं। कभी व्यक्ति शांत एवं सुखी होता है। कभी उद्विग्न, चिन्तातुर एवं दुःखी हो जाता है। कभी वही निकम्मा होकर बैठ जाता है। तीनों गुण अन्य दो गुणों को अपने वश में करके प्रधान बनने की ताक में लगे रहते हैं।

गुणों की साम्यावस्था

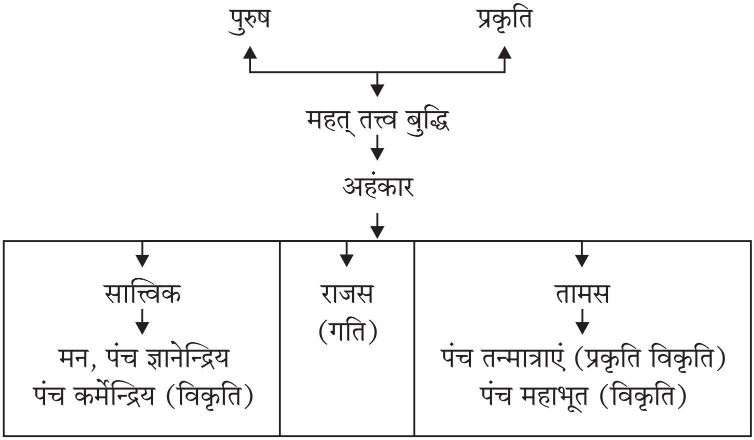
प्रकृति में तीन गुण मूलतः विद्यमान रहते हैं। इन तीनों गुणों की साम्यावस्था ही प्रकृति है। मूल प्रकृति जड़ तथा एक है। इसे ही प्रधान, अव्यक्त या प्रकृति कहा जाता है। जब गुणों की साम्यावस्था होती है तब सृष्टि नहीं होती। एकमात्र प्रकृति का ही साम्राज्य रहता है विकृति का नहीं। प्रकृति के अन्तर्गत निम्नलिखित भेद हैं—(1) मूल प्रकृति (केवल कारण, कार्य नहीं) (2) प्रकृति-विकृति (कार्य-कारण दोनों) (3) विकृति (केवल कार्य)।

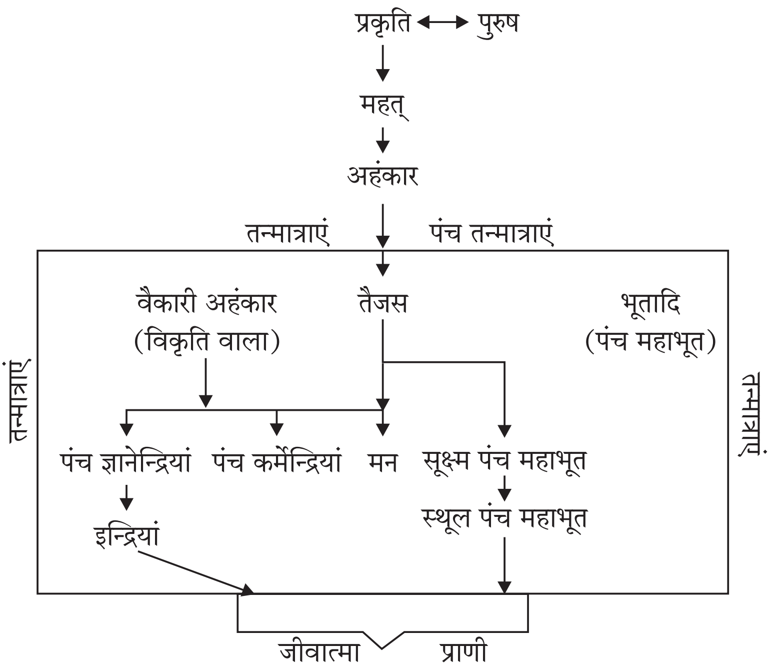
मूल प्रकृति एक है। प्रकृति-विकृति सात पदार्थ हैं—महत् तत्त्व, अहंकार और पंच तन्मात्राएं—शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध।

विकृति—विकृति में 16 तत्त्व हैं। पंच महाभूत, पांच ज्ञानेन्द्रियां, पांच कर्मेन्द्रियां और मन। इस प्रकार प्रकृति के अन्तर्गत 24 तत्त्व हैं और 25वां तत्त्व पुरुष है।

प्रकृति और पुरुष दोनों के संयोग से सृष्टि उत्पन्न होती है, अन्यथा नहीं। न अकेली प्रकृति विश्व की सृष्टि कर सकती है और न अकेला पुरुष। प्रकृति क्रियाशील होने पर भी जड़ है और पुरुष चेतन होने पर भी निष्क्रिय है। जड़-चेतन

के समन्वित संयोग को सांख्य दर्शन में अंधे और लंगड़े के दृष्टान्त से समझाया गया है। गांव में आग लग जाने पर अन्धा मार्ग नहीं देख सकता। किन्तु अंधा लंगड़े को कंधे पर बैठा ले तो दोनों अग्नि से बच निकलते हैं। प्रकृति अंधी है किन्तु उसके पास गति है। पुरुष के पास दृष्टि है किन्तु गति नहीं, निष्क्रिय है। दोनों के संयोग से ही सृष्टि का क्रम चलता है।





श्री गुरुदत्त ने अहंकार के तीन भेद माने हैं। वैकारी अर्थात् विकृति के रूप में पांच ज्ञानेन्द्रियां, पांच कर्मेन्द्रियां और मन को सत्ता देने वाला वैकारी अहंकार है। पंच महाभूतों को प्रकट करने वाला भूतादि अहंकार है और स्वयं अपनी प्रशंसा पर मुग्ध होने वाला तैजस अहंकार है। अहंकार के ये भेद आयुर्वेद की सुश्रुत संहिता के आधार पर किये गये हैं। अहंकार के मलिन या शुद्ध होने की मात्रा के अनुसार अहंकार के अनेक भेद हो सकते हैं। अहंकार ही जगत् का भ्रमजाल रचता है। सात्त्विक अहंकार का ही परिभाषित नाम विकारी है। राजस अहंकार का परिभाषित नाम तैजस है और तामस अहंकार का परिभाषित नाम भूतादि है। चूंकि पंचमहाभूत जड़ हैं अतः वे तामस अहंकार से ही प्रकट होते हैं। मन, ज्ञानेन्द्रियां, कर्मेन्द्रियां चूंकि चेतना युक्त हैं इसलिए वे सात्त्विक अहंकार से प्रकट होती हैं। पंचमहाभूत जब अत्यन्त सूक्ष्म तत्त्व के रूप में होते हैं तब उन्हें पंच तन्मात्राएं कहा जाता है।

(1) शब्द तन्मात्रा से आकाश उत्पन्न होता है।

शब्द + स्पर्श तन्मात्रा से वायु उत्पन्न होता है।

शब्द + स्पर्श + रूप तीनों के मेल से तेज उत्पन्न होता है।

शब्द + स्पर्श + रूप + रस चारों के मेल से जल उत्पन्न होता है।

शब्द + स्पर्श + रूप + रस + गंध पांचों के योग से पृथ्वी उत्पन्न होती है।

जितनी तन्मात्राएं अधिक मिलती जाती हैं उतना ही तत्त्व अधिक स्थूल होता जाता है। आकाश सबसे सूक्ष्म और पृथ्वी सबसे स्थूल तत्त्व है। इन्हें पंच महाभूत कहा जाता है। कभी-कभी पंच तत्त्व भी कहा जाता है। किन्तु सांख्य के मत में तत्त्व केवल पांच ही नहीं वरन् पचीस हैं। पंच महाभूतों के मेल से प्रकृति में पंचीकरण होता है। इन पांचों के मेल से बना हुआ यह जगत् प्रपंच कहलाता है। जिसका शाब्दिक अर्थ पांच तत्त्वों के अच्छी प्रकार के मेल से रचा हुआ जगत् है। वेदान्त में जगत् प्रपंच को माया कहा गया है। क्योंकि यह देखते-देखते आँख से लुप्त हो जाता है। इसलिए प्रपंच का मूल अर्थ तो पांच तत्त्वों का बना हुआ जगत् है। किन्तु, यह अकस्मात् लुप्त हो जाने के कारण धोखा प्रतीत होता है। इसलिए प्रपंच का अर्थ माया या धोखा रूढ़ हो गया। वेदान्त के मत में जगत् व्यावहारिक सत्ता है, पारमार्थिक सत्ता नहीं। यह प्रतीत होते हुए भी अन्तिम विश्लेषण में सत्य के रूप में नहीं टिकता। इसलिए इस प्रपंच की धोखा, माया या इन्द्रजाल से उपमा दी जाती है।

प्रकृति को प्रधान या अव्यक्त नाम से भी पुकारा जाता है। प्रकृति के कई अर्थ किये जाते हैं। प्र+कृति अर्थात् प्रथम कृति। भाव यह है कि सृष्टि रचना का प्रथम बिन्दु प्रकृति ही है। कृति का प्रथम चरण प्रकृति है। यदि मूल प्रकृति ही न हो

तो न तीन गुण हों, न पांच तत्त्व। न पंच ज्ञानेन्द्रियां जिनसे कुछ जाना जा सके, न पंच कर्मेन्द्रियां जिनसे कुछ किया जा सके। इसलिए सब जीवों की समस्त कृतियों का मूल प्रकृति अर्थात् प्रथम मूल कृति है। पुरुष तो निष्क्रिय है उसमें केवल चेतना है, कृति नहीं। प्रकृति का दूसरा अर्थ किया जाता है प्रचुर कृति अर्थात् अनेकता का विस्तार। भाव यह है कि परब्रह्म परमेश्वर तो एक है। किन्तु उसने जब संकल्प किया **'एकोऽहं बहु स्याम्'** इस संकल्प से नाना नामों और रूपों वाली प्रकृति की लीला प्रारम्भ हो गई। प्रकृति का एक अन्य अर्थ किया जाता है प्रयोजन वृत्ति (कृति) अर्थात् किसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए होने वाली कृति। सृष्टि के कण-कण तथा पग-पग पर हमें एक प्रयोजन, एक व्यवस्था, एक नैतिक उद्देश्य का दर्शन या अनुभव होता है। शिशु के जन्म से पहले मां के स्तनों में दूध का आ जाना और बच्चे के दांत निकलते ही मां की छाती का दूध सूख जाना, प्रकृति के किसी महान् प्रयोजन का संकेत है। मानवों द्वारा निःश्वास में छोड़ी हुई विषैली गैसें (कार्बनडाइऑक्साइड, नाइट्रोजन) वृक्ष, वनस्पतियों का अनिवार्य भोजन बन जाना तथा वृक्ष एवं वनस्पतियों द्वारा छोड़ी हुई ऑक्सीजन गैस का मानवों के लिए प्राणदायिनी वायु बन जाना, सृष्टि के एक विश्वव्यापी प्रयोजन अथवा विश्वव्यापी महायज्ञ का संकेत है। पश्चिमी विज्ञान अथवा जड़ भौतिकवाद प्राकृतिक शक्तियों को निरुद्देश्य, प्रयोजनहीन, अंधशक्ति मात्र मानता है। जो भारतीय दर्शन को स्वीकार्य नहीं है।

प्रकृति का एक अन्य अर्थ है स्वभाव या स्थिति। जैसे आपकी कैसी प्रकृति है अथवा भारतीयजन प्रकृति से ही अहिंसक होते हैं। इसी प्रकार लोभी प्रकृति वाला, कभी निःस्वार्थ, अथवा त्यागी नहीं हो सकता। इन सब प्रयोगों में प्रकृति का अर्थ स्वभाव है। यहां प्रकृति का शाब्दिक अर्थ इस प्रकार लिया जाता है कि व्यक्ति या वस्तु की प्रथम रचना के समय ही उसमें जो गुणविशेष आ गया वह प्रकृति का गुण ही उसका स्वभाव है। जैसे केशर की प्रकृति रंग, चन्द्र की प्रकृति ठण्डी है और सूर्य की प्रकृति गरम है। दूध प्रकृति से रेचक है, दही प्रकृति से पाचक है। स्वभाव का अर्थ है शुरू से बना हुआ अपना भाव। प्रभाव का अर्थ है विशेष प्रयास से बनाया हुआ या बढ़ाया हुआ भाव। अभाव का अर्थ है भाव का लुप्त हो जाना। बाली अहंकार से राम का प्रभाव देखना चाहता था अतः उसे दण्ड मिला। किन्तु उसके पुत्र अंगद को भगवान् ने अपना लिया है। सुग्रीव भगवान् का स्वभाव देखना चाहता था। भगवान् ने अपने भक्तवत्सल स्वभाव से दुर्बल एवं राज्यच्युत सुग्रीव को भी मित्र बनाकर हृदय से लगा लिया। रावण भगवान् राम का अभाव करना चाहता था। किन्तु, भगवान् के प्रभाव से उसका वंश समेत अभाव हो गया। अपने शरणागत की रक्षा का स्वभाव होने के कारण भगवान् ने विभीषण

को अपनाया और उसे सोने की लंका का स्वामी बना दिया—

जो सम्पत्ति सिव रावनहि, दीन्हि दिएँ दस माथ।
सोइ सम्पदा विभीषनहि, सकुचि दीन्हि रघुनाथ।

5/49 रामचरितमानस

भगवान् की प्रकृति के दो रूप—अपरा और परा

ऐसो को उदार जग माही—भगवान् के स्वभाव में अतिशय उदारता, भक्तवत्सलता, शरणागतरक्षा, दीनदयालुता और अहैतुकि-कृपा है। यह भगवान् की प्रकृति है।

गीता के अनुसार भगवान् की प्रकृति के दो रूप हैं—प्रथम अपरा प्रकृति अर्थात् बहिरंग प्रकृति जो आठ अंगों वाली है—

भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च।
अहंकार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा।। 7/4, गीता

पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, बुद्धि और अहंकार—इस प्रकार यह मेरी आठ प्रकार से विभक्त प्रकृति है।

दूसरी—परा प्रकृति जो चेतन जीवरूपा है। इसके संयोग के बिना अपरा प्रकृति कुछ भी नहीं कर सकती। इसे ही सांख्य में पुरुष नाम दिया गया है। अतः प्रकृति का अर्थ भी दो प्रकार का है—बाह्य-स्थिति और अन्तःस्थिति। बाह्य स्थिति या परिस्थिति पांच तत्त्व, तीन गुण का खेल है और अन्तःस्थिति में चेतन जीवात्मा है। इसी के अनुरूप बाह्य प्रकृति का स्वभाव सत्त्व, रज, तमरूपा है और अन्तःस्थिति का स्वभाव (आत्मभाव) सच्चिदानन्द स्वरूप है। स्वभाव का व्यावहारिक अर्थ तीन गुणों के प्रभाव से मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार की स्थिति है। स्वभाव का आध्यात्मिक अर्थ (परा प्रकृति मूलक अर्थ) आत्मभाव, सच्चिदानन्द भाव है। स्वास्थ्य का व्यावहारिक अर्थ तन-मन की स्थिति या स्वास्थ्य का ऊंचा आध्यात्मिक अर्थ स्व (आत्मा) में स्थित होना है। पर स्वस्थ वही है जो आत्मस्थ है। स्वामी रामतीर्थ ने लिखा Disease is to be dis at ease with God ईश्वर के साथ स्वाभाविक सामंजस्य का टूट जाना ही रोग है। इसी प्रकार स्वस्थ का आध्यात्मिक अर्थ है अपना रूप। और व्यावहारिक अर्थ है बाह्य आकृति या गुणवाचक रूप। ईर्ष्या का स्वरूप है दूसरों की उन्नति या गुण सम्पदा को देखकर अकारण ही जलते रहना। यह हुआ मन का रूप। तन-मन, बुद्धि, अहंकार के रूप को स्वरूप कह देते हैं। समस्त देवताओं के प्रचलित रूप का वर्णन करने के लिए रूप शब्द को प्रयोग न करके स्वरूप शब्द प्रयोग किया जाता है। जैसे विष्णु का स्वरूप, भगवान् शंकर का स्वरूप, अग्नि का स्वरूप

आदि। इसका कारण यही है कि सब देवता आत्मरूप ही हैं। आत्मा ही एकमात्र सर्वोपरि श्रेष्ठ देवता है। श्रेष्ठ शब्द उसी की सीमित अभिव्यक्ति है। इसी प्रकार स्वस्ति का शाब्दिक अर्थ है सु+अस्ति अर्थात् कल्याण है या कल्याण हो। वास्तव में परम कल्याण उस अस्ति को पा लेने में है जो अजर-अमर, अविनाशी है।

स्वस्तिक शब्द और स्वस्तिक चिह्न प्राचीन काल में सूर्य का प्रतीक माना जाता था। इस प्रतीक का प्रचलन सारे संसार भर में हुआ। यूनानी लोग इसे ग्रीक क्रॉस कहते थे। ईसाई धर्म का क्रॉस भी इसी में से निकला। जर्मनी का हिटलर अपने को शुद्ध आर्य कहता था और अपने राष्ट्रीय झण्डे पर स्वस्तिक के चिह्न को सम्मान देता था। स्वस्तिक का प्रचलित अर्थ कल्याण, मंगल या मंगली का देवता गणपति रूढ हो गया है। किन्तु स्वस्तिक का ऊंचा आध्यात्मिक अर्थ है स्व+आस्तिक अर्थात् जो अपनी आत्मा में आस्था रखने वाला है। ईश्वर को न मानने वाला नास्तिक है। ईश्वर की परोक्ष सत्ता को मानने वाला आस्तिक और ईश्वर का अपरोक्षानुभूति-वाला स्वस्तिक है।

मूल प्रकृति का अर्थ है मूल स्थिति। गुणों की साम्यावस्था में गुणों की प्रकृति शांत एवं स्पन्दहीन रहती है। इसलिए उसमें कोई भी आकृति-विकृति प्रकट नहीं होती। सारी सृष्टि मूल प्रकृति में लुप्त-गुप्त, सुप्त पड़ी रहती है। उसी प्रकार जैसे विशाल वटवृक्ष धरती के नीचे दबे हुए एक बहुत छोटे सरसों के दाने के परिमाण के वटवृक्ष के बीज में छिपा रहता है। इसलिए मूल प्रकृति को अव्यक्त कहा जाता है अर्थात् जो अभी प्रकट नहीं हुआ। गीता में भगवान् ने कहा है—

अव्यक्तादीनि भूतानि व्यक्तमध्यानि भारत।
अव्यक्तनिधनान्येव तत्र का परिदेवना।। 2/28, गीता

अर्थात् सब प्राणी प्रारम्भ में अव्यक्त ही रहते हैं। मध्य काल में व्यक्त हो जाते हैं। अंत में पुनः अव्यक्त ही हो जाते हैं। अतः इस विषय में चिन्ता करने का कोई कारण नहीं है। व्यक्त होने का अर्थ है नाम-रूप में प्रकट होना, रचित होना, स्पष्ट होना, दृश्यमान होना आदि। व्यक्ति को इसलिए व्यक्ति कहा गया है कि निराकार, निर्विकार परमेश्वर की उस रूप में अभिव्यक्ति हुई है। यह वेदान्त की दृष्टि है। सांख्य दृष्टि से निराकार पुरुष (जीवात्मा) अव्यक्त प्रकृति के सहारे से व्यक्ति के रूप में प्रकट हो जाता है।

इस मूल प्रकृति को अव्यक्त और प्रधान भी कहा जाता है। प्रधान का शाब्दिक अर्थ है मुख्य, बड़ा या सर्वश्रेष्ठ। और मूल सांख्य में प्रधान मूल के अर्थ में प्रयोग हुआ है। यह भौतिक सृष्टि का स्रोत है। जैसे मूल पहले होता है और तूल बाद में है। वृक्ष की जड़ पहले होती है और तना, डाली या पत्ते बाद में। इसी

प्रकार सारी सृष्टि का आदि वह मूल प्रकृति है जिसके गर्भ से सारी सृष्टि प्रकट होती है।

प्रकृति का एक अर्थ माया या रचना शक्ति या प्रसवधर्मी भी है। वेदान्त की दृष्टि से यह परमेश्वर की संकल्प शक्ति ही है जो सृष्टि रचना का सामर्थ्य रखती है। सांख्य के मत में यह सृष्टिरचना का सामर्थ्य रखने वाली विराट् शक्ति है जो पुरुष रूपी चेतन की चाबी लगाने से खुल जाती है और अपना सृष्टि रचना का खेल खेलने लगती है।

बड़ी विस्मयकारक-सी प्रतीत होने वाली बात यह है कि गुण साम्यावस्था में जिसमें सृष्टि होती ही नहीं वह मूल प्रकृति, वही प्रधान (मूल), वही अव्यक्त, वही मूल स्थिति है। सृष्टि या जीवन तो प्रकृति की विकृति है। जीवन सबको प्यारा लगता है और विकृति शब्द सबको अप्रिय एवं अशोभन लगता है। अतः जीवन या सृष्टि को विकृति कहने में बड़ा विचित्र एवं अनुपयुक्त-सा लगता है। किन्तु सांख्य दर्शन में सृष्टि या जीवन को विकृति ही माना गया। भले ही विकृति शब्द को विशेष कृति के अर्थ में मान लिया गया है और विपरीत कृति के अर्थ में नहीं। जिस प्रकार जागृत एवं स्वप्नावस्था में मन विकृत होकर विषयों में फंसता है और सुषुप्ति में अनजाने अपने मूल की ओर लौटता है। समाधि में अपने मूल स्वभाव में प्रतिष्ठित होता है। इस विश्लेषण के अनुसार हम जागृत को विकृति एवं समाधि को मूल प्रकृति कह सकते हैं। शांति मूल प्रकृति है और संघर्ष एवं संग्राम विकृति है। इसी अर्थ में महाकवि कालिदास ने रघुवंशम् महाकाव्य में लिख दिया है—

मरणं प्रकृतिर् भूतानाम्।
जीवनं विकृति उच्यते।।

अर्थात् मरण जीवों की मूल प्रकृति है और जीवन तो अल्पकालिक विकृति मात्र है। बौद्ध दर्शन एवं वेदान्त ने भी जन्म एवं आवागमन के चक्र को विकृति (परमेश्वर से अथवा अपने स्वरूप से वियोग अथवा पतन) कहा है। जीव संसार के भव बंधन में पड़ा हुआ दुःख-क्लेश भोगता है। इसे विकृति कहना ही उचित प्रतीत होता है। निर्वाण या मोक्षपद परमशांति का पद है। जहां सब विकृतियां एवं बंधन समाप्त होकर जीवन अपनी मूल स्थिति में लौटता है। वेदान्त में उस मूल स्थिति को मूल प्रकृति न कहकर उसे ब्राह्मीस्थिति कहा गया है। एकोऽहं मूल प्रकृति है और बहु स्याम् विकृति। एकता अर्थात् पुरुषोत्तम पद ही हमारा सच्चा स्वरूप है तथा अनेकता में स्वार्थ एवं संघर्ष में ईर्ष्या-द्वेष की वृत्तियां करना निश्चय ही विकृति कहलायेगी। शांति मूल प्रकृति है और अशांति विकृति है। सारी आध्यात्मिक साधना का उद्देश्य यही है कि मनुष्य अपने मूलस्वरूप (अपनी प्रकृति) को पुनः प्राप्त कर

सके। जल प्रकृति है और लहर, बूंद, भाप, बादल, वर्षा, हिमपात, नदी, नाला, कूप, तालाब आदि सब उसी की विकृतियां हैं। सांख्य उन्हें प्रकृति का विकार कहता है और वेदान्त उन्हें ब्रह्मतत्त्व के ही नाना विकृत रूप कहता है। आकाश से बरसने वाली नन्ही बूंद यदि अपनी मूल प्रकृति भूल जाए तो चिन्तित होती है कि अथाह महासमुद्र में डूब मरूंगी। किन्तु, अपने स्वरूप का ज्ञान होते ही वह भय और चिन्ता से मुक्त होकर आनन्द से तरंगायमान हो उठती है—

नन्ही बूंदें रोयी कि सागर में क्या होगा,
सागर बोला प्रिये बिन्दु से सिन्धु बनोगी।

यदि जगत् और जीवन में विकृति न होती तो इसमें तीन ताप, पंच क्लेश क्यों होते और इससे मुक्ति की साधना के मार्ग भिन्न-भिन्न दर्शनों द्वारा क्यों दिग्दर्शित कराये जाते? भगवान् बुद्ध कहते हैं कि मानव जीवन दुःखपूर्ण जगत् की अति विचित्र यात्रा है। भगवान् कृष्ण गीता में कहते हैं—

अनित्यमसुखं लोकमिमं प्राप्य भजस्व माम्।। 9/33

अर्थात् यह सारा जगत् अनित्य एवं दुःखदायी है। अतः (मनुष्य) लोक को पाकर तू मेरा (ही) भजन कर।

भारतीय अद्वैत परम्परा एवं आधुनिक विज्ञान दोनों स्वीकार करते हैं सृष्टि एक समय में नहीं थी। वर्तमान में है पर भविष्य में पुनः नहीं रहेगी। जिसका आदि और अन्त में अस्तित्व नहीं केवल मध्य में अस्तित्व है उसको परम सत्य नहीं कहा जा सकता। अतः उसकी व्यावहारिक सत्ता ही अद्वैत वेदान्त को मान्य है।

अन्य भारतीय दर्शन परम्पराएं संसार को अनित्य तो मानती हैं पर असत्य नहीं मानती। पर उन दर्शनवेत्ताओं के विचारों का अध्ययन करने पर उनके यहां भी जगत् की सत्ता व्यावहारिक स्तर की ही सिद्ध होती है न कि पारमार्थिक।

त्रैतवादी तीन सत्ताओं को मानता है पर जगत् को केवल सत् मानता है। जीव को सत्-चित् एवं ब्रह्म को सत्-चित्-आनन्द स्वरूप मानता है। स्पष्ट है जगत् को ब्रह्म की स्थिति नहीं प्रदान करता और जीव को जगत् से न जोड़कर ब्रह्म से जोड़ता है। जगत् में तो केवल जड़ता है अतः चेतना व आनन्द पाने के लिए ब्रह्म की उपासना पर जोर देता है।

ऐसे द्वैतवादी आचार्य भी मुमुक्षु को, साधक को प्रकृति से छुड़ाकर प्रभु से, आत्मा से जोड़ते हैं। जितने भी वैष्णवाचार्य हुए हैं वे संसार से परमविरक्त हुए हैं और वे सभी साधकों को जगत् को त्यागकर भगवद् प्राप्ति के लिए प्रेरित करते हैं।

ऋषि अरविन्द ने भी जगत् को अवास्तविक वास्तविकता Unreal reality ही कहा है।

अब अगर इन सब विचारकों के मत में जगत् की वास्तविक सत्ता होती या ब्रह्म के समान महत्ता होती तो जगत् को त्यागकर ब्रह्म को अपनाने की बात क्यों करते? इन्हें भी वास्तविक जगत् की पारमार्थिक सत्ता स्वीकार नहीं है।

विज्ञान भी जगत् की सापेक्ष सत्ता ही स्वीकारता है निरपेक्ष नहीं।

हम सबकी अनुभूति भी है कि हम संसार व उसकी धन-सम्पत्ति को कितना भी पकड़कर रखें, चिपका कर रखें। समय आता है सब हाथ से निकल जाता है चाहे राजा हो या फकीर। संसार अंत तक टिकता नहीं। इसलिए संसार हमें छोड़े उससे पूर्व हम ही संसार को छोड़ देवें तो कष्ट के स्थान पर आनन्द होगा। इसलिए हमारे मनीषियों ने हमारे जीवन की ही रचना ऐसी की है जिससे हम स्वयं धीरे-धीरे संसार को छोड़ सकें। इसके लिए ही वानप्रस्थ और संन्यास आश्रम की व्यवस्था की है।

संसार में तात्कालिक, सामयिक सुख है, स्थायी सुख नहीं। स्थायी सुख की तो भ्रान्ति मात्र ही है। इसके लिए पागल गीदड़ी का दृष्टान्त दिया जाता है। एक पागल गीदड़ी थी। जंगल से एक भलामानस जा रहा था, उसके पीछे पड़ गई। वह भागने लगा। भागते-भागते एक पेड़ के चारों तरफ चक्कर काटने लगा। हिम्मत करके उसने पेड़ की आड़ में होकर उसका एक कान पकड़ लिया और दूसरे हाथ से दूसरा कान पकड़ लिया। छोड़े तो गीदड़ी काट खाये। कान पकड़ते समय उसके कुछ नोट गिर गए। देर तक वह गीदड़ी के कान पकड़कर खड़ा रहा। इतने में एक आदमी पास से गुजरा, उसने पूछा—क्या कर रहे हो? वह बोला—यह गीदड़ी नोट देती है, इसलिए इसके कान पकड़े खड़ा हूं। वह बोला—तब तो बड़ा मजा है। कान पकड़ने वाला बोला—आओ, तुम भी मजा लो। उसने गीदड़ी का एक कान पकड़वाया, खुद हटकर दूसरा कान भी उसके हाथ में दे दिया। अब अलग होकर कहने लगा ये नोट-वोट कुछ नहीं देती, सिर्फ काटती है। तुम भी जो कोई मिले, उसको इसके कान पकड़वा देना और खुद अलग हो जाना। संसार का भी यही हाल है। हम संसार रूपी गीदड़ी के कान पकड़े खड़े हैं और लड़के की सगाई करके इसका एक कान पकड़ा देते हैं। इस प्रकार यह सिलसिला पीढ़ी-दर-पीढ़ी चलता है। वास्तव में संसार में सुख नहीं है। पर हम परम्परा से, पूर्वसंस्कारवश, स्वभाववश मान लेते हैं कि इसमें सुख है और संसार चक्र में फंसे रहते हैं।

इस प्रकार न संसार में स्थायी सुख है और न इसकी तीनों कालों में सत्ता ही है। अत: संसार की व्यावहारिक सत्ता मानकर इसका सदुपयोग होना चाहिए। सांख्य प्रकृति की स्वतंत्र सत्ता मानता है पर अद्वैत वेदान्त प्रकृति की स्वतंत्र सत्ता नहीं स्वीकारता है। वेदान्त के अनुसार शक्ति सदा किसी शक्तिमान की शक्ति होती है। प्रकृति पुरुष पर निर्भर है। माया महेश्वर के अधीन है। लक्ष्मी सदा नारायण के चरणों में है। शक्ति शिव की उपासिका है।

मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम्। 1/10, गीता

प्रकृति जगत् की रचना करती है। किन्तु, सर्वशक्तिमान प्रभु के नियंत्रण में रहकर ही। अतः जिसके वश में प्रकृति भी रहती है उस मायावशवर्ती महेश्वर की सर्वोच्च सत्ता मानना ही युक्तिसंगत है। प्रकृति को ही पुरुष की सहचरी और कहीं उसकी आज्ञावशवर्ती दासी कहा गया है। सम्राट् को छोड़कर दासी की वंदना करना यह भी उचित प्रतीत नहीं होता। सती नारी विनय में अपने आपको स्वामी की दासी वर्णन करती है। यदि प्रकृति को परम पुरुष की रानी भी माना जाए तो भी रानी अपने गौरव के लिए राजा के पद पर पूर्णतया अवलम्बित है। रानी राजा के कारण रानी है, यदि राजा ही न हो तो उसे रानी कौन कहेगा? अमेरीका के राष्ट्रपति केनेडी की पत्नी को तभी तक राजकीय सम्मान मिलता था जब तक राष्ट्रपति केनेडी जीवित था। पति के स्वर्गवास के पश्चात् उसे कौन पूछता है? रानी का गौरव राजा के पद पर अवलम्बित है। उसी प्रकार प्रकृति की सत्ता एवं महत्ता परमेश्वर की सत्ता एवं महत्ता पर पूर्णतया अवलम्बित है।

शक्ति और शक्तिमान एक-दूसरे से पृथक् दो अलग तत्त्व नहीं माने जा सकते। नभ से उसकी नीलिमा को अलग कौन कर सकता है? अग्नि से ताप, जल से शीतलता, आकाश से व्याप्ति अलग हो ही नहीं सकती। अग्नि का ताप अग्नि के कारण ही है। जल की शीतलता जल के कारण ही है। चीनी की मिठास चीनी के कारण ही है। गोस्वामी तुलसीदासजी कहते हैं—

गिरा अरथ जल बीचि सम कहिअत भिन्न न भिन्न।
बंदउँ सीताराम पद जिन्हहिं परम प्रिय खिन्न।।

बालकाण्ड।।18।। (मानस)

अर्थात् वाणी और उसका अर्थ दो तत्त्व नहीं हैं। जैसे वाणी और उसका अर्थ, जल और लहर एक-दूसरे से पृथक् नहीं कहे जा सकते। दोनों तत्त्व एक हैं। नाम दो हैं। उसी के समान सीता और राम केवल वाणी के दो नाम हैं तत्त्व से एक ही हैं। मैं उन एकीभूत हुए सीताराम को नमस्कार करता हूं।

शिव-शक्ति की तात्त्विक एकता दर्शाने के लिए ही कलाकारों ने अर्धनारीश्वर की मूर्तियां बनाई। जिसमें एक ही मूर्ति के बायें भाग में शक्ति और दायें भाग में शिव को दिखाया गया।

उपसंहार

प्राचीन विज्ञान का दुराग्रह था कि भौतिक जड़ तत्त्व ही सृष्टि का अन्तिम सार पदार्थ है। पदार्थ की परिभाषा है जो वस्तु जगह घेरती है और वजन रखती है

उसे पदार्थ कहते हैं। आधुनिक विज्ञान ने पदार्थ को Molecule में, Molecule को Atom में, Atom को इलेक्ट्रॉन, न्यूट्रॉन, प्रोटोन आदि में तोड़कर यह पाया कि अन्त में पदार्थ न बचकर केवल ऊर्जा ही बचती है। रसेल जैसे प्रखर यथार्थवादी दार्शनिक ने भी कह दिया कि भौतिकता का भवन सदा के लिए गिर चुका है। जड़ पदार्थ की जिन ईंटों से भौतिकवाद का भवन खड़ा हुआ था वे ईंटें ही कच्ची प्रमाणित हुई, और भौतिकवाद का महल ध्वस्त हो गया है। इसलिए विश्व की अन्तिम सत्ता ऊर्जा शक्ति को मानकर Materialism के स्थान पर Energism का नारा लगाया जा रहा है।

अब इस Energy का स्वरूप क्या है? जड़ है या चेतन। इस पर वैज्ञानिकों में ऊहापोह चल रहा है। रसेल जैसे पुराने भौतिकवादी दुराग्रह के कारण अभी तक उस ऊर्जा को आध्यात्मिक शक्ति तो नहीं मान सका। किन्तु, वह कहता है यह शक्ति अत्यन्त रहस्यमयी है जो अभौतिक शक्ति है। सम्भवतः जड़ और चेतन दोनों से परे है। जिसने जड़ और चेतन, दोनों को प्रकट किया है।

रसेल का यह विचार भी नितान्त अनुकूल ही है। जहां तक जड़-चेतन का भेद है वह सीमित जड़ और चेतन का ही भेद है। इन्द्रिय, मन, बुद्धि और अहंकार सब सीमित चेतना के खेल हैं। परमतत्त्व सच्चिदानंदघन-ब्रह्म जड़ चेतन के द्वन्द्व से परे है, निर्द्वन्द्व है।

साधना की सीढ़ी के रूप में जड़-चेतन का भेद अनिवार्य है। जड़ को छोड़कर चेतन की ओर बढ़ना साधना है। साधना की सिद्धि हो जाने पर यह रहस्य खुलता है कि जिसे हम जड़ समझे बैठे थे वह चेतन की तमोगुणी लीला है। वही आत्मा पत्थर में सो रही है, पेड़ में स्वप्न ले रही है और पशुओं में ऊंघ रही है। तथा मानव में जागृत है। वही चराचर स्थावर-जंगम में, सारे विश्व में एक ही सत् का दर्शन होता है—

सीयराम मय सब जग जानी।
'सर्वं खल्विदं ब्रह्म'
हरिरेव जगत् जगदेव हरिः।

साधनाकाल में—ब्रह्म सत्यं जगत् मिथ्या।

सिद्धि में—सर्वं खल्विदं ब्रह्म।

साधना में—

करम प्रधान बिस्व करि राखा।
जो जस करइ सो तस फल चाखा। 2/248/4 (मानस)

सिद्धि में—

उमा दारु जोषित की नाईं।
सबहिं नचावत रामु गोसाईं।। 4/10/7 (मानस)

सबको भगवान् कठपुतली की तरह नचा रहे हैं—रामकृष्ण परमहंस

सब करन-करावन आप ही आप—गुरु नानकदेव

जिसका अहम् बना हुआ है वह अपने अहंकार से कर्म करता है। अत: वह कर्म के लिए उत्तरदायी है। पर जिसका कर्तापन का अहंकार गल गया है, भगवान् में लय हो गया है उसे कर्मफल नहीं भोगना पड़ता। क्योंकि वह भगवान् की प्रेरणा से कर्म करता है। अहंकार (कर्तापन) का लय करना ही साधना है। सृष्टि जगत् रूप से मिथ्या है। पर ब्रह्म रूप से सत्य है। अधिष्ठान रूप से सत्य है, अधिष्ठित रूप से मिथ्या है। जैसे फेन बूंद, लहर, वीचि, समुद्र, नदी, नाला रूप से असत्य है, जल रूप से सत्य है। और हम ब्रह्म को प्राप्त करें यही सृष्टि का प्रयोजन है।

जेम्सजीन्स, श्र+ोडिंजर, ओपनहाइमर, फ्रिटजाफ, केपरा आदि पश्चिम के चोटी के वैज्ञानिक यह मानने लगे हैं और घोषणा करने लगे हैं कि पदार्थ के विश्लेषण से प्रकट होने वाली ऊर्जा का स्वरूप जड़ नहीं चेतन ही है। इस प्रकार आधुनिक विज्ञान वेदान्त के गर्भगृह की ड्योढ़ी में चरण रख रहा है। अभी तक वेदान्त के गर्भगृह में प्रवेश नहीं किया। परम चैतन्य की झलक मिल जाने पर पूरे विज्ञान जगत् का रूपान्तरण हो जाएगा। वह विज्ञान ही न रहकर दर्शन में परिणत हो जाएगा।

मैक्समूलर ने हिन्दू जाति की विशेषता का उल्लेख करते हुए ईमानदारी के साथ यह स्वीकार किया है कि भारतेत्तर देशों में ज्ञान-विज्ञान या चिन्तन शक्ति की जहां परिसीमा होती है वहां से हम हिन्दुओं के ज्ञान-विज्ञान एवं दर्शन का आरम्भ पाते हैं।

पूर्व और पश्चिम के दर्शन में दृष्टिभेद

पूर्व	पश्चिम
1. मुक्त वातावरण में दर्शन का जन्म। धर्म से इसका विरोध या सम्बन्ध नहीं।	1. पश्चिम का दर्शन एक समय तक चर्च का Hand bag फिर राजनीति का। दर्शन के क्षेत्र में जिन्होंने भी बाइबिल से भिन्न विचार रखे बहिष्कृत हुआ।
2. समाज के रंग में दर्शन का समावेश है।	2. यहां दर्शन सिर्फ दार्शनिकों तक सीमित।
3. दर्शन ज्ञान का समस्त स्रोत एवं अन्तिम ध्येय है।	3. अध्ययन के अनेक विषयों में एक विषय है।
4. दर्शन के अनुकूल जीवन पद्धति अपनाने का प्रयास।	4. थोड़ी-सी चोट में सारा दर्शन भूल जाते हैं।
5. आन्तरिक खोज	5. बाह्य खोज
6. मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार	6. सिर्फ Mind
7. आत्मा की तीनों अवस्था जाग्रत्, स्वप्न एवं सुषुप्ति पर विचार	7. सिर्फ जाग्रत् पर विचार
8. तुरीय पर विचार	8. यहां नहीं।
9. सुषुप्ति नयी स्फूर्ति देती है।	9. इस पर विचार नहीं।
10. सहकार और समन्वय ही जीवन है	10. संघर्ष ही जीवन है। योग्यतम का विजय, जिसकी लाठी उसकी भैंस।
11. पूर्वी सभ्यता केन्द्र की ओर ले जाने वाली है।	11. पश्चिमी सभ्यता केन्द्र से दूर ले जाने वाला, परिधि में भटकाने वाली है।
12. पूर्वी सभ्यता विधायक है।	12. पश्चिमी सभ्यता विनाशक है।
13. पूर्वी सभ्यता जोड़ने वाली है।	13. पश्चिमी सभ्यता तोड़ने वाली है।

पाश्चात्य दृष्टिकोण : भारतीय दृष्टिकोण

पाश्चात्य दृष्टिकोण	भारतीय दृष्टिकोण
1. भौतिक दृष्टिकोण	1. आध्यात्मिक दृष्टिकोण।
2. शरीर सुख को ही सर्वस्व मानते हैं।	2. शरीर, मन, बुद्धि और आत्मा—इन चारों का सामूहिक विचार करते हैं।
3. काम (वासना-पूर्ति) और अर्थ (धनार्जन)-ये दो विचार प्रधान हैं।	3. धर्म, अर्थ काम और मोक्ष—इन चार प्रकार के पुरुषार्थों का विचार रखते हैं। उनमें अर्थ और काम को धर्म नियंत्रित रखता है।
4. भोगवादी धनी सम्मान पाता है।	4. त्यागी और संयमी सम्मान पाता है। त्यागी-संन्यासी सबका पूज्य है।
5. अपने ही सुख का विचार।	5. दूसरों के सुख को प्रधानता दी गई है।
6. संग्रही वृत्ति।	6. अपरिग्रह।
7. खंडशः पृथक्-पृथक् विचार किया जाता है।	7. एकात्म दृष्टि से समग्र विचार किया जाता है।
8. सामान्यों का शोषण होता है।	8. अंत्योदय ध्येय है।
9. अधिकार-रक्षण में दक्षता है।	9. कर्तव्यपालन में निष्ठा।
10. प्रकृति का शोषण, प्रकृति के विनाश की चिंता न करके अधिक से अधिक लाभ प्राप्ति।	10. प्रकृति का दोहन (प्रकृति को विनाश से बचाकर संयमपूर्वक लाभ-ग्रहण)
11. व्यक्ति, समाज और प्रकृति में संघर्ष को अनिवार्य मानना।	11. व्यक्ति, समाज और प्रकृति में सामंजस्य स्थापना का यत्न करना।

12. स्वार्थपरता से समाज में विषमता की सृष्टि।	12. समाज में समता और समानता की स्थापना के प्रयास।
13. क्षणिक सुख द्वारा तृप्ति।	13. शाश्वत-सुख की तृष्णा।
14. स्त्री उपभोग्य वस्तु है।	14. स्त्री मातृवत् पूज्य है।
15. माता के अतिरिक्त अन्य सब स्त्रियां विवाह करने योग्य हैं।	15. पत्नी के अतिरिक्त सब स्त्रियां मातृवत् आदरणीय हैं।
16. बाइबिल, कुरान आदि का जो प्रमाण नहीं मानते, वे नरक को जाते हैं।	16. प्रत्येक के लिए मुक्ति सुलभ है क्योंकि सब संप्रदाय निर्विशेष ईश्वर के अंश हैं।
17. विधर्मियों से द्वेष करते हैं।	17. सर्वधर्म समादर।
18. प्रोटैंस्टैंट कैथोलिक, शिया सुन्नी आदि इनके मध्य संघर्ष।	18. एक ही परिवार में विभिन्न संप्रदायों के अनुयायी रहते हैं।
19. छल-कपट, शस्त्र आदि की सहायता से धर्म प्रचार।	19. सांस्कृतिक मूल्यों के आधार पर मत परिवर्तन।
20. अधिक से अधिक लोगों द्वारा अधिक से अधिक सुख की प्राप्ति का ध्येय है।	20. सभी सुखी हों—यह ध्येय है।
21. आर्थिक क्षेत्र में अपने ही लाभ का विचार प्रमुख।	21. दूसरों के सुख-सुविधार्थ प्रयास।
22. कृत्रिम अभाव बनाकर अपने लाभ को बढ़ाने का प्रयास।	22. विपुल उत्पादन-सबके लाभ की चिंता।
23. बढ़ती हुई कीमत को आधार बनाने वाला अर्थ-चिंतन।	23. स्वल्प मूल्य से अधिकतम लोगों का लाभ।
24. एकाधिपत्य स्थापना के प्रयास (संदर्भ-पेंटेट, कापीराइट, ट्रेडमार्क आदि)	24. विपणन में मुक्त स्पर्धा।
25. वेतनभोगी कर्मचारियों पर आधारित व्यवस्था।	25. स्वावलंबन पर आधारित व्यवसायों को प्रोत्साहित करने वाली व्यवस्था।

पश्चिम सभ्यता की प्याली है और भारत संस्कृति का पालना

संस्कृति जीवन के आदर्शों का विकास है जबकि सभ्यता जीवन के साधनों का विकास है। बाहर की खोजों द्वारा पश्चिम ने जीवन को अधिक सुविधाजनक और साहसी बनाया है। भारत ने आन्तरिक परिष्कार के द्वारा मानव को अधिक श्रेष्ठ, पवित्र एवं महान् बनाने में अधिक योग्यता दिखाई है।

भारतीय संस्कृति के प्रतीक भगवान् बुद्ध हैं जो त्याग और आत्म-विजय के आदर्श हैं। इसकी तुलना में पश्चिम के गौरव का प्रतीक यूनानी राजा युलिसिस है जो द्वीप जीतने के अभियान में लड़ते-लड़ते मर गया। भारत में अशोक इसलिये महान् हुआ कि उसने राज्य सत्ता त्याग दी और भिक्षु बन गया। किन्तु पश्चिम में सिकन्दर, सीजर और नेपोलियन को इसके लिए महान् माना गया क्योंकि वे सत्ता और वैभव के भूखे थे। भारत की महानता दान में है और पश्चिम की बहादुरी लूट-खसोट में। विश्व शान्ति की समस्या पर प्रकाश डालते हुए प्रो. ओबराय ने कहा, 'बिना मन की शान्ति (योग साधना) और घर की शान्ति (पवित्र गृहस्थ धर्म) के विश्व शान्ति असम्भव है। पश्चिम में भी कुछ गुण है। परिश्रमशीलता, साहसिकता, वैज्ञानिक दृष्टिकोण और नागरिक मूल्य जो भारतीय को अवश्य सीखने चाहिये। परन्तु सच्ची मानव संस्कृति के लिये नैतिक और आध्यात्मिक तत्त्व भारत द्वारा ही दिये जा सकते हैं जो संस्कृति के क्षेत्र में परम्परा से जगद्‌गुरु रहा है।

भारत परलोकवादी है और पश्चिम इहलोकवादी। भारतीय संस्कृति के चार आदर्शों में से भारत ने धर्म और मोक्ष का अधिक चिन्तन किया है और पश्चिम ने अर्थ और काम का अधिक विचार किया है किन्तु धर्म के बिना पश्चिम में अर्थ अनर्थ का, काम—भोग एवं रोग—का कारण बन रहा है।